वैदिक वीर-गर्जना

रामनाथ वेदालङ्कार

वैदिक वीर-गर्जना

रामनाथ वेदालङ्कार

प्रकाशक
हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार
७५१, कटरा लच्छूसिंह,
देहली

मिलने का पता
रामनाथ वेदालङ्कार
गुरुकुल कांगड़ी,
ज़िला सहारनपुर

मुद्रक
लोकमान्य प्रेस, दरियागंज
दिल्ली

पूर्व निवेदन

हे पाठक !

वेद के उपवन से चुन २ कर वीर-भावों को जागृत करने वाले इन मन्त्र-पुष्पों को लेकर आज मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । पुष्प भगवान् के हैं, वे मेरी कृति नहीं हैं, मैं तो केवल इनका संग्रह करके माला में पिरोने वाला हूँ । इसलिये मन्त्रों में जो अपूर्व सौन्दर्य निहित है उसका गौरव मुझे नहीं है । हाँ, यदि माला के ग्रन्थन में कुछ सौन्दर्य आ सका हो तो उसका यत्किञ्चित् श्रेय मुझे मिल सकता है । और, उसके निर्णय का अधिकार आपको है ।

इस पुस्तक में जो प्रथम रचना है वह कुछ परिवर्तित रूप में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की हीरक जयन्ती पर वेद-सम्मेलन में पढ़ी गई थी, और सभा से संचालित "आर्य" पत्र में प्रकाशित हो चुकी है । कई भाइयों ने मुझे प्रेरणा की कि इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कर देना उपयोगी होगा । मेरी अपनी भी ऐसी इच्छा थी । सो यह आपके सम्मुख उपस्थित है । इसके साथ दो अन्य रचनायें भी इस पुस्तक में हैं—एक "उद्‌बोधन" और दूसरी "वीरता की उमंग में" । आशा है आप इन तीनों रचनाओं का स्वागत करेंगे ।

वेदों में युद्धसम्बन्धी अनेक बड़े २ रोमाञ्चकारी वर्णन आते हैं, किन्तु इस पुस्तक का उद्देश्य वैदिक युद्ध-विद्या को दर्शाना नहीं है। इसमें हमने केवल उन वीरोचित मन्त्रों को स्थान दिया है जो सर्व-साधारण के मनों में वीरता की भावना को भरने वाले हैं। यह संसार एक समर-स्थली है। मनुष्य को बड़े २ संघर्षों में से होकर गुज़रना है। चारों तरफ विघ्न-बाधायें और शत्रु मुँह बाये खड़े हैं और उसे हड़पना चाहते हैं। उन सबका उसे मुकाबला करना है। उसके लिये मन में प्रबल वीर-भावना की आवश्यकता है। उसी वीर-भावना को जागृत करने के उद्देश्य से यह संग्रह तैयार किया गया है।

मनुष्य के लिये वेद की प्रेरणा है कि ऐ नर! तू उठ, आगे बढ़, हिम्मत मत हार, आशावादी बन, और तेरे मार्ग में जो बाधक बन कर खड़े हों उन्हें तोड़ता-फोड़ता-कुचलता हुआ आगे बढ़ता जा। ऐसा प्रयत्न कर कि जगत् में 'आर्य-राज्य' हो, राक्षस का राज्य न हो। कभी तू आततायी राक्षस के अत्याचार को सहन मत कर। **"उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र"** ऋग्० ३-३०-१७—हे वीर! राक्षस को जड़ समेत उखाड़ फेंक। पर, सावधान! वेद के इन आदेशों का कहीं तू यह अर्थ न लगा लेना कि वेद ने तुझे पैशाची हिंसा की, लूट-पाट की, व्यर्थ उपद्रव मचा कर जगत् में अशान्ति फैलाने की अनुमति दे दी है। पहले समझ ले कि शत्रु कौन है? यूँ ही किसी को शत्र का करार मत दे दे। किन्तु जब तुझे मालूम हो जाये कि यह

आततायी है, समाज का शत्रु है, तुझे और अन्य सैंकड़ों निरपराध मनुष्यों को तबाह करने पर उतारू है, तब पीछे मत हट, कायर होकर मत बैठ जा, उसके हमले से डर कर किवाड़ बन्द कर घरों में मत जा छिप, ईंट का जवाब पत्थर से दे।

यदि मेरा यह संग्रह जनता में वेद की इस वीर-भावना को जगाने में कुछ भी सहायक हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

अन्त में मैं मान्य भाई श्रीयुत हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार का हृदय से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन का सारा भार अपने ऊपर लेकर इसे शीघ्र जनता के सम्मुख लाने में सहयोग दिया है।

वेदप्रेमियों का सेवक—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी
भाद्रपद पूर्णिमा, २००३

रामनाथ वेदालङ्कार

प्रकाशक की ओर से--

मैं अकस्मात् ही इस संग्रह का प्रकाशक बना, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु मेरा अहोभाग्य कि स्वाध्याय योग्य ऐसे अपूर्व संग्रह का प्रकाशन मेरे हाथ लगा।

आशा है कि स्वाध्यायशील जनता इसका समुचित आदर करेगी और शीघ्र ही इसे परिवर्धित और अधिक सुन्दर एवं संस्कृत रूप में प्रकाशन का अवसर मिलेगा।

लेखक के दूर रहने और आजकल के नये 'टाईप' की सहज-भंजकता के कारण अत्यन्त ध्यान से देखने पर भी छापे की अशुद्धियाँ कहीं-कहीं रह गयी हैं। इसके लिये पाठक क्षमा करेंगे। अधिक खटकने वाली अशुद्धियों का शुद्धाशुद्ध पत्र पाठकों की सुविधा के लिए साथ में दे दिया गया है।

—प्रकाशक

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१४	गो	णो
८	२	लिए मजबूत शत्रु	लिए। मजबूत हों शत्रु
८	८	उबोधक	उद्बोधक
८	११	यथ	यथा
९	६	दिप्सतो यश्च	दिप्सतो दिप्सतो यश्च
१३	२	पत्यो	पत्यौ
१६	११	मृकः	वृकः
२०	२०	पर	परे
२६	१४	रषि	रसि
२८	६	तार्ति	तार्ति
३२	१७	जन्म	जन्य
३३	३	मास्म	मस्मि
४५	८	भ्युदुभो	भ्यदुभो
५४	१२	चिंसा	चिंषा

२

वीर-भावना

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः

अथर्व० ७-५२-८

मेरे दायें हाथ में कर्म है,

बायें हाथ में

विजय

धरी

है

पाठकगण !

आइये, यदि आप वैदिक वीरता की दुन्दुभि को सुनना चाहते हैं तो आइये। हृदय में वीर-भावों की तरंगें उठाने वाले वैदिक गीतों को यदि आप पढ़ना चाहते हैं तो आइये।

यह देखिये, वेद मनुष्य को वीर, पुरुषार्थी, कर्मण्य होने का सन्देश दे रहा है ; ओजस्वी, निर्भय, प्रबल आशावादी होने का सन्देश दे रहा है, मन्युमान्, अत्याचार को न सहने वाला, पिशाचों को कुचल डालने की शक्ति वाला होने का संदेश दे रहा है।

वेद की यह शिक्षा नहीं है कि तुम संसार में अकर्मण्य होकर भाग्यवादी बन कर निष्क्रिय बैठे रहो। कर्मरहित भक्तिवाद और भाग्यवाद के प्रचार से भारत को बहुत हानि उठानी पड़ी है। अब आवश्यकता है कि वैदिक कर्मयोग और वैदिक वीरता का प्रचार हो।

समय २ पर भारतवर्ष में अनेक उच्चकोटि के धर्माचार्य जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने 'भक्ति' और 'अहिंसा' पर बहुत बल दिया है। किन्तु जिस सजीव भक्ति और जिस सजीव अहिंसा का उन्होंने प्रचार किया उसे तो लोगों ने भुला दिया और उसके स्थान पर धीरे २ भक्ति के नाम से कर्महीन निर्जीव भक्ति और अहिंसा के नाम से कायरता का प्रचार होने लगा। यह भारत की अधोगति का एक बहुत बड़ा कारण रहा है। निःसन्देह भक्ति

और अहिंसा हमारे धर्म के प्राण हैं । वेद में भी उच्चकोटि की भक्ति और अहिंसा की प्रेरणा है । किन्तु यह हमें अच्छी तरह स्मरण रख लेना चाहिये कि भक्ति का अर्थ अकर्मण्यता और अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है ।

वेद भक्ति के रंग में रंगे हुए हैं, पर वेद की भक्ति कर्महीन भक्ति नहीं है । वेद तो भक्ति के साथ २ कर्मवीर होने का उपदेश देते हैं !

१. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः ।

यजु: ४०-२

"मनुष्य को चाहिये कि वह कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे" यह वैदिक जीवन का आदर्श वाक्य है ; वेद का भक्त अपने प्रभु से भी यही प्रार्थना करता है कि

२. इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि,
जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ऋग् ७-३२-४६

"हे प्रभो ! तू हमारी नस-नस में 'कर्म' को भर दे, हमें कर्म की शिक्षा दे ताकि हम जीवन-संग्राम में जीवित-जागृत रहते हुए

---

१. (इह) इस संसार में (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन् एव) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे ।

२. (इन्द्र) हे प्रभो ! (नः) हमारे लिए (क्रतुं) कर्म को (आभर) ला, (यथा) जैसे (पिता पुत्रेभ्यः) पिता पुत्रों के लिए

ज्योति को प्राप्त कर सकें।" सचमुच जिनके हाथ में 'कर्म' नहीं है उन्हें जीवन में ज्योति के दर्शन नहीं होते, उन्हें तो चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। उन्हें अपने जीवन में सुनहले दिन देखने को नहीं मिलते, उन्हें तो सर्वत्र निराशा ही निराशा दृष्टिगोचर होती है इसीलिये वेद का स्तोता अपने प्रभु से प्रार्थना कर रहा है कि तू मुझे "कर्म" से अनुप्राणित कर दे।

३. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।

ऋग् १०-२५-१

"हे प्रभो! तू मेरे अन्दर उत्साह, बल और कर्म को फूंक दे।" वेद की ये कर्मयोग की प्रार्थनायें हमें सदा स्मरण रखनी चाहियें। साथ ही वेद का यह सन्देश भी हमारे सामने आ जाना चाहिये कि अन्याय और अत्याचार को नष्ट करने के लिये यदि हिंसा भी करनी पड़े तो वह हिंसा नहीं अपितु वीरता है। "यदि कोई दुष्ट आततायी हम पर अत्याचार करने आता है तो

(पुरुहूत) हे बहुतों से पुकारे जाने वाले प्रभो! (अस्मिन् यामनि) इस जीवन-संग्राम में (नः शिक्ष) हमें कर्म की शिक्षा दे, ताकि (जीवाः) जीवितों की तरह से रहते हुए हम (ज्योतिः अशीमहि) ज्योति को प्राप्त कर सकें।

. हे प्रभो! (नः) हमारे अन्दर (भद्रं) श्रेष्ठ (मनः) उत्साह को (दक्षं) बल को (उत) और (क्रतुं) कर्म को (अपि वातय) फूंक दे।

हमारा कर्तव्य है कि वीरता के साथ उसका मुकाबला करें, कायर न बनें। इसीलिये वेद मनुष्य को जागृत करता हुआ कहता है—

४. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्राः वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

ऋग् १०-१०३-१३

ऐ वीरो! उठो, आगे बढ़ो, विजय प्राप्त करो। तुम्हारी भुजायें उग्र हों ताकि तुम कभी पराजित न हो सको।

५. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नियंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो, हनो वृत्रं जया अपो-
ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋग् १-८०-३

ऐ वीर! आगे बढ़, शत्रु पर वार कर उसे परास्त करदे तेरे शस्त्र को कोई रोक नहीं सकता। शत्रु को झुका देने वाला बल

---

४. (नरः) हे वीरो! (प्र-इत) आगे बढ़ो, (जयत) विजयप्राप्त करो, (इन्द्रः) प्रभु (वः) तुम्हें (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे। (वः बाहवः) तुम्हारी भुजायें (उग्राः सन्तु) पराक्रमयुक्त हों, (यथा) ताकि, तुम (अनाधृष्याः) अपराजेय (असथ) हो जाओ ॥

५. (प्र-इहि) आगे बढ़ (अभि-इहि) आक्रमण कर, (ते वज्रः) तेरा शस्त्र (न नियंसते) किसी से रोका नहीं जा सकता। (इन्द्र) ऐ वीर! (ते शवः) तेरा बल (नृम्णं) शत्रु को झुका देने वाला है, (वृत्रं) दुष्ट को (हनः) मार दे, (अपः) प्रजाओं को (जय) जीत ले, (स्वराज्यम् अनु अर्चन् 'भव') स्वराज्य की आराधना करने वाला बन।

तुझ में विद्यमान है। देख, तेरी जिन प्रजाओं को शत्रु ने पकड़ कर कैद कर लिया है उन्हें शत्रु के हाथ से जीत ले। स्वराज्य का आराधक बन।

६. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः॥

ऋग् १-१५२-३

ऐ वीर! राक्षसों को दुनियां से मिटा दे, घात-पात मचाने वालों को कुचल डाल, दुष्ट शत्रु की दाढ़ों को तोड़ दे। जो तुम्हें दास बनाना चाहता है उस वैरी के क्रोध को चूर कर दे।

७. स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे, वीलू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः।

ऋग् १-३९-२

---

६. (रक्षः विजहि) राक्षस को मार दे, (मृधः विजहि) हिंसकों को कुचल दे, (वृत्रस्य) दुष्ट शत्रु की (हनू) दाढ़ों को (विरुज) तोड़ डाल। (वृत्रहन् इन्द्र) हे दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट कर देने का सामर्थ्य रखने वाले वीर! (अभिदासतः) तुझे दास बनाना चाहने वाले (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम्) क्रोध को (विरुज) चूर २ कर दे।

७. (स्थिराः सन्तु) मजबूत हों (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (पराणुदे) शत्रु को परे खदेड़ देने के लिये, (उत) और (वीलू) मजबूत हों (प्रतिष्कभे) शत्रु के वार को रोकने के लिये। (युष्माकं) तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) स्तुति के लायक हो, (मायिनः मर्त्यस्य) मायावी मनुष्य की [सेना] (मा) ऐसी न हो सके।

ऐ वीरो ! मज़बूत हों तुम्हारे हथियार शत्रु को खदेड़ कर परे भगा देने के लिए मजबूत शत्रु के वार को रोकने के लिये। तुम्हारी सेना, तुम्हारा संगठन, तारीफ़ के लायक हो।

८. उत्तिष्ठत संनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥

अथर्व ११-१०-१

उठो वीरो, तैयार हो जाओ, झण्डे हाथों में पकड़ लो। जो भुजंग हैं, लंपट हैं, गैरहैं, राक्षस हैं, दुश्मन हैं उनपर धावा बोलदो।

शायद वेद के इन्हीं उबोधक वचनों को सुन कर वैदिक वीर गर्जता हुआ कह रहा है—

९. यदि नो गां हंसि, यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो, यथ नोऽसो अवीरहा ॥

अथर्व १-१६-४

---

८. (उदाराः) वीरो ! (उत्तिष्ठत) उठो, (संनह्यध्वम्) तैयार हो जाओ (केतुभिःसह) झण्डों के साथ। (सर्पाः) जो भुजंग हैं, लम्पट हैं (इतर-जनाः) जो इतर-जन हैं, गैर हैं, (रक्षांसि) जो राक्षस हैं (अमित्रान्) उन सब दुश्मनों पर (अनु धावत) धावा कर दो।

९. (यदि) यदि तू (नः गां हंसि) हमारी गाय को मारेगा (यदि अश्वं) यदि घोड़े को [मारेगा] (यदि पूरुषम्) यदि पुरुष को [मारेगा] तो (तं त्वा) उस तुझ को (सीसेन) सीसे से—सीसे की गोली से (विध्यामः) बेध देंगे, (यथा) जिससे कि तू (नः अवीरहा असः) हमारे वीरों का घात न कर सके।

ओ आततायी, तू मुझे निस्तेज; बुझा हुआ मत समझना; मत समझना कि तू आकर मुझे सता लेगा और मैं चुपचाप सह लूंगा। देख, यदि तू मेरी गाय को मारेगा, घोड़े को मारेगा मेरे सम्बन्धी पुरुषों का मारेगा तो याद रख मैं तुझे सीसे की गोली से वेध दूंगा।

१०. यो नो दिप्सददिप्सतो यश्च दिप्सति।
वैश्वानरस्य दंष्ट्रयोरग्नेरपि दधामि तम्॥
अथर्व ४-३६-२

जो कोई व्यर्थ में किसी का वध न करने वाले,किन्तु दुष्टों का पकड़ २ कर वध करने वाले हम लोगों को मारने का मनसूबा करेगा उसे मैं जलती हुई आग की लपटों में झोंक दूंगा।

११. यो नः शपादशपतः, शपतो यश्च नः शपात्।
शुने पेष्ट्रमिवावक्षामं, तं प्रत्यस्यामि मृत्यवे॥
अथर्व ६-३७-३

---

१०. (यः) जो (अदिप्सतः नः) न सताने वाले हमको (दिप्सत्) सताना चाहता है (यः च) और जो (दिप्सतः) [दुर्जनों को] सताने वाले हमको (दिप्सति) सताना चाहता है (तम्) उसको (वैश्वानरस्य अग्नेः) वैश्वानर आग की (दंष्ट्रयोः) दाढ़ों में—ज्वालाओं में (अपि-दधामि) धर दूँगा।

११. (यः) जो (अशपतः नः) शाप न देने वाले हमको (शपात्) शाप देगा-कोसेगा (यः च) और जो (शपतः नः) [दुर्जनों को] शाप

जो कोई भले आदमियों को शाप न देने वाले, किन्तु दुर्जनों को जी भर कर शाप देने वाले हम लोगों को आकर कोसेगा हमारे सामने आकर व्यर्थ गाली-गलौज बकेगा उसे मैं मौत के आगे फेंक दूंगा, जैसे कुत्ते के आगे सूखी रोटी के टुकड़े।

१२. यथा सूर्यो नक्षत्राणामुद्यंस्तेजांस्याददे।
एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विषतां वर्च आददे॥

अथर्व ७-१३-७

अरे, मुझे क्या तुमने मामूली आदमी समझ रखा है। मैं तो सूर्य हूँ! सूर्य!! जैसे सूर्य उदित होकर सब नक्षत्रों के तेज को हर लेता है वैसे ही मैं अपनी अपूर्व आभा के साथ जगत् में उदित होकर दुश्मनी करने वाले सब स्त्री पुरुषोंके तेजको हरलूँगा।

१३. जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माक-
मभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः।

देने वाले हमको (शपात्) शाप देगा-कोसेगा, (तम्) उसको (मृत्यवे) मौत के आगे (प्रत्यस्यामि) फेंक दूँगा (इव) जिस तरह (शुने) कुत्ते के आगे (अवक्षामं) सूखी (पेष्ट्रम्) पिट्ठी की रोटी।

१२. (यथा) जैसे (उद्यन् सूर्यः) उदित होता हुआ सूर्य (नक्षत्राणां) नक्षत्रों के (तेजांसि) तेजों को (आददे) हर लेता है (एव) वैसे ही मैं (द्विषतां) दुश्मनी करने वाले (स्त्रीणां च पुंसां च) स्त्रियो और पुरुषों के (वर्चः) तेज को (आददे) हर लूँगा।

१३. (अस्माकं) हमारी (जितं) विजय होगी, (अस्माकं)

इदमहमामुष्यायणस्याऽमुष्याः पुत्रस्य
वर्चस्तेजः प्राणमायुर्निवेष्टयामि-
इदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥

अथर्व १०-५-३६

निश्चय ही हमारी विजय होगी, हमारा अभ्युदय होगा, दुश्मन की सेना को हम परास्त कर देंगे। मुझ से दुश्मनी ठानने वाला जो अमुक पुरुष का बेटा और अमुक माँ का बेटा है उसके वर्चस् को, तेज को, प्राण को आयु को मैं हर लूंगा। उसे जमीन पर दे मारूँगा।

१४. अरातीयोर्भ्रातृव्यस्य, दुर्हार्दो द्विषतः शिरः।
अपि वृश्चाम्योजसा ॥

अथर्व १०-६-१

हमारा (उद्भिन्नम्) अभ्युदय होगा, (विश्वाः) सब (अरातीः पृतनाः) शत्रु-सेनाओं को (अभ्यष्ठाम्) मैंने परास्त कर कर दिया है। (इदम् अहम्) यह मैं (आमुष्यायणस्य) अमुक पुरुष के बेटे के (अमुष्याः पुत्रस्य) अमुक मां के बेटे के (वर्चः) वर्चस् को (तेजः) तेज को (प्राणम्) प्राण को (आयुः) आयु को (निवेष्टयामि) लपेट लूँगा, (इदम् एनम्) यह मैं इसको (अधराञ्चं पादयामि) नीचे जमीन पर दे मारूँगा।

१४. (अरातीयोः) शत्रुता का आचरण करने वाले (भ्रातृव्यस्य) वैरी का और (दुर्हार्दः) दुष्ट-हृदयी (द्विषतः) द्वेषी दुश्मन का (शिरः) सिर (ओजसा) अपने पराक्रम से (अपिवृश्चामि) मैं काट डालूँगा।

मुझसे शत्रुता करने वाले दुष्टहृदयी, द्वेषी दुश्मन का मैं सिर काट डालूँगा।

यह है अत्याचार व अत्याचारी के प्रति वेद की उग्र भावना। वेद चुपचाप अत्याचार को सह लेने की शिक्षा नहीं देता, अपितु अत्याचारी का सिर तोड़ डालने की हिम्मत बँधाता है। सिर्फ वेद के पुरुषों में ही ऐसी वीर-भावना नहीं भरी है, किन्तु वेद की नारियां भी ऐसे ही वीर-भावों से ओतप्रोत हैं। एक नारी के उद्‌गार देखिये—

१५. अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

ऋग् १०-८६-८

अरे, यह घातक मुझे अबला समझे बैठा है! मैं अबला नहीं, वीरांगना हूँ, वीर की पत्नी हूँ। मौत से न डरने वाले वीर मेरे सखा हैं। मेरा पति दुनियां में अपना सानी नहीं रखता।

---

१५. (अयं शरारुः) यह घातक (माँ) मुझे (अवीराम् इव) अबला सा (अभिमन्यते) समझता है; (उत अहम्) मैं तो वीरिणी अस्मि) वीराङ्गना हूं, (इन्द्रपत्नी) वीर की पत्नी हूं, (मरुत्सखा) मौत से न डरने वाले वीर मेरे सखा हैं। (इन्द्रः) मेरा वीर पति (विश्वस्मात्) सबसे (उत्तरः) बढ़ा-चढ़ा है।

१६. मम पुत्राः शत्रुहणो, ऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि सञ्जया, पत्यो मे श्लोक उत्तमः ।।

ऋग् १०-१५९-३

मेरे पुत्र शत्रु के छक्के छुड़ा देने वाले हैं, मेरी पुत्री अद्वितीय तेजस्विनी है और मैं अपनी क्या बताऊँ ? कोई मेरी तरफ आंख उठा कर तो देखे, ऐसा परास्त होकर लौटेगा कि सदा याद रखेगा।

यह है वेद की नारी। अस्तु आगे और सुनिये वैदिक वीरों की बहादुरी के गीत—

१७. सहे पिशाचान्त्सहसा—ऐषां द्रविणं ददे।
सर्वान् दुरस्यतो हन्मि, सं म आकूतिर्ऋध्यताम् ।।

अथर्व ४-३६-४

---

१६. (मम पुत्रा.) मेरे पुत्र (शत्रु हणः) शत्रुहन्ता हैं, (अथो) और (मे दुहिता) मेरी पुत्री (विराट्) विशेष तेजस्विनी है। (उत अहम्) और मैं (सञ्जया अस्मि) दुश्मन को पूरी तरह जीत लेने वाली हूँ। (मे पत्यौ) मेरे पति में (उत्तम श्लोकः) उत्तम कीर्ति का निवास है।

१७. (पिशाचान्) पिशाचों को (सहसा) अपने बल के जोर से (सहे) मैं परास्त कर दूंगा, (एषाम्) इनकी (द्रविणम्) धन-दौलत को (आ-ददे) छीन लूँगा। (सर्वान्) सब दुरस्यतः) दुष्टता करने वालों को (हन्मि) मार दूंगा। (मे आकूतिः) यह मेरा संकल्प (समृध्यताम्) पूरा होवे।

पिशाचों को मैं अपनी शक्ति के जोर से दबा दूंगा, इनकी धन दौलत छीन लूंगा। सब दुष्टता करने वालों को मार दूंगा, मेरा यह संकल्प पूरा होकर रहेगा।

१८. तपनो अस्मि पिशाचानां, व्याघ्रो गोमतामिव।
श्वानः सिंहमिव दृष्ट्वा, ते न विन्दन्ते न्यञ्चनम् ॥

अथर्व ४-३६-६

दुष्ट पिशाचों के बीच में मैं खलबली मचा देने वाला हूँ, जैसे बाघ आकर ग्वालों के बीचमें। मुझे सामने देखकर पिशाच अपनी सब चौकड़ी भूल जाते हैं जैसे कुत्ते शेर को देख कर।

१९. न पिशाचैः सं शक्नोमि, न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति, यमहं ग्राममाविशे ॥

अथर्व ४-३६-७

---

१८. (पिशाचानाम्) पिशाचों का (तपनः) सन्तप्त कर डालने वाला (अस्मि) हूँ, (इव) जैसे (व्याघ्रः) बाघ (गोमताम्) ग्वालों का। (श्वानः) कुत्ते (सिंहम् इव) जैसे शेर को (दृष्ट्वा) देख कर, वैसे ही (ते) वे पिशाच (दृष्ट्वा) मुझे देखकर (न्यञ्चनम्) चौकड़ी (न विन्दन्ते) नहीं ले पाते।

१९. (पिशाचैः) पिशाचों के साथ (न संशक्नोमि) मैं समझौता नहीं कर सकता, (न स्तेनैः) न चोरों के साथ, (न वनर्गुभिः) न डाका मार कर जंगल में जा छिपने वाले डाकुओं के साथ। (पिशाचाः) पिशाच (तस्मात्) वहां से (नश्यन्ति) भाग जाते हैं (यं ग्रामम्) जिस गाँव में (अहम् आविशे) मैं प्रविष्ट हो जाता हूँ।

पिशाचों के साथ, चोर-लुटेरों के साथ, डाकुओं के साथ मैं कभी समझौता नहीं कर सकता ! जिस गाँव में, जिस नगर में, मैं जा पहुँचता हूँ, पिशाच वहाँ से भाग खड़े होते हैं।

२०. य ग्राममाविशत, इदमुग्र सहो मम ।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति, न पापमुपजानते ॥

अथर्व ४-३६-८

सुनलो, जिस गाँव में भी यह मेरा दमनकारी बल पहुँच जाता है, पिशाच वहां से रफूचक्कर हो जाते हैं। मुझे देखते ही वे सब दुष्टता करना भूल जाते हैं।

२१. अक्ष्यौ च ते मुखं च ते, व्याघ्र जम्भयामसि ।
आत् सर्वान् विंशतिं नखान् ॥

अथर्व ४-३-३

वेदकी वीर गर्जना यहीं समाप्त नहीं हो जाती। और देखिये—ओ बाघ ! तेरी आँख फोड़ देंगे, तेरा मुंह चीर देंगे बीसों नख तोड़ डालेंगे। आ तो सही !

---

२०. (यं ग्राम्) जिस गांव में (इदं मम) यह मेरा (उग्रं सहः) उग्र बल (आविशते) पहुँच जाता है (तस्मात्) वहां से (पिशाचाः) पिशाच (नश्यन्ति) भाग जाते हैं, (पापम्) पाप का—दुष्टता का (न उपजानते) विचार भी नहीं कर पाते।

२१. (व्याघ्र) ओ बाघ ! (अक्ष्यौ च ते) तेरी दोनों आँखों को (मुखं च ते) और तेरे मुँह को (आत्) और फिर (सर्वान्) सब (विंशतिम्) बीसों (नखान्) नाखूनों को (जम्भयामसि) कुचल देंगे।

२२. व्याघ्रं दत्वतां वयं, प्रथमं जम्भयामसि ।
आदु ष्टेनमथो अहिं, यातुधानमथो वृकम् ॥
अथर्व ४-३-४

नोकीले दांतों वाले प्राणियों में श्रेष्ठ समझे जाने वाले बाघ को हम जान से मार डालेंगे, चोर का, सांप का, परपीड़क राक्षस का, भेड़िये का हम वध कर देंगे ।

२३. यो अद्य स्तेन आयति, स संपिष्टो अपायति ।
अथर्व ४-३-५

जो कोई चोर-लुटेरा हमारे पास आयेगा वह अच्छी तरह कुट-पिट कर लौटेगा ।

२४. परेणैतु पथा वृकः, परमेणोत तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः, परेणाघायुरर्षतु ॥
अथर्व ४-३-२

---

२२. (दत्वताम्) दांतों वाले प्राणियों मे (प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ (व्याघ्रम्) बाघ को (आत् उ) और (स्तेनम्) चोर को (अथो) और (अहिम्) साँप को, तथा (यातुधानम्) यातना देने वाले राक्षस को (अथो) और (वृकम्) भेड़िये को (जम्भयामसि) हम मार डालेंगे ।

२३. (यः) जो कोई (स्तेनः) चोर (अद्य) आज (आयति) हमारे पास आयेगा (स) वह (संपिष्टः) कुट-पिट कर, अच्छी तरह से मरम्मत किया जाकर (अपायति) वापिस लौटेगा ।

२४. (वृकः) भेड़िया (परेण पथा) परे के रास्ते से (एतु) चला जावे

ओ भेड़िये ! मुझसे दूर रहना, ओ चोर ! मुझसे दूर रहना, ओ सांप ! मुझसे दूर रहना; ओ पापी ! मुझसे दूर रहना। खबरदार, क्यों मेरे पास आकर जान से हाथ धोना चाहते हो।

देखिये, वैदिक वीर कैसा हिम्मती, ओजस्वी, जिन्दादिल और निर्भय है ! चाहे शेर, बाघ आदि कोई भयानक जन्तु हो, चाहे चोर-डाकू-लुटेरा हो, चाहे अन्य कोई आततायी या दुश्मन हो, किसी से वह डरनेवाला नहीं है। वह तो अपने प्राण को सम्बोधन करके कहता है—

२५. यथा द्यौश्च पृथिवी च, न बिभीतो न रिष्यतः।
एवा मे प्राण मा बिभेः ॥

अथर्व २-१५-१

ऐ मेरे प्राण ! तू किसी से डर मत। देख यह धरती क्या किसी से डरती है ? यह आस्मान क्या किसी से डरता है ? तू भी मत डर, कोई तेरा बाल बाँका नहीं कर सकेगा।

(उत) और (तस्करः) चोर भी (परमेण "पथा एतु") परे के रास्ते से चला जाये। (दत्वती रज्जुः) दाँतों से डसने वाली रस्सी अर्थात् सांप भी (परेण) परे से, और (अघायुः) पापेच्छु भी (परेण) परे से (अर्षतु) निकल जाये [अर्थात् ये सब मुझ से परे ही परे रहें, पास आने की हिम्मत न करें]।

२५. (यथा) जैसे (द्यौः च पृथ्वी च) आसमान और धरती (न-बिभीतः) किसी से डरते नहीं (न रिष्यतः) न किसी से हिंसित होते हैं (एव) इसी तरह (मे प्राण) ऐ मेरे प्राण ! (मा बिभेः) मत डर।

२६. अश्मवर्म मेऽसि,
यो मे प्राच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।।

ऐ मेरे आत्मन् ! तू मेरा लोहे का कवच है । पूर्व दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुंह की खाकर लौटेगा ।

"यो मा दक्षिणाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

दक्षिण दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुंह की खाकर लौटेगा ।

"यो मा प्रतीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

पश्चिम दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खाकर लौटेगा ।

---

२६. ऐ आत्मन् ! तू (मे) मेरा (अश्मवर्म) लोहे का कवच (असि) है । (यः) जो कोई (अघायुः) पापेच्छु (प्राच्याः दिशः) पूर्व दिशा से [(दक्षिणायाः दिशः) दक्षिण दिशा से, (प्रतीच्याः दिशः) पश्चिम दिशा से, (उदीच्याः दिशः) उत्तर दिशा से, (ध्रुवायाः दिशः) निचली दिशा से, (ऊर्ध्वायाः दिशः) ऊपर की दिशा से, (दिशाम् अन्तर्देशेभ्यः) बीच की दिशाओं से] (मा अभिदासात्) मुझ पर घात करने आयेगा (एतत्) यह देखना (स) वह (ऋच्छात्) दूर जाकर पड़ेगा ।

"यो मोदीच्या दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

उत्तर दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुंह की खाकर लौटेगा।

"यो मा ध्रुवाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

नीचे की दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुँह की खांकर लौटेगा।

"यो मोर्ध्वाया दिशोऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

ऊपर की दिशा से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुंह की खाकर लौटेगा।

"यो मा दिशामन्तर्देशेभ्योऽघायुरभिदासात् ।
एतत् स ऋच्छात् ।"

बीच की दिशाओं से जो कोई पापी मुझ पर घात करने आयेगा वह उल्टी मुंह की खाकर लौटेगा।

(अथर्व० ५-१०)

२७. "पृथिव्यास्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि ।"

---

२७. (पृथिव्याः) पृथ्वी से [(अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से, (दिवः) द्यु-लोक से, (दिग्भ्यः) दिशाओं से] (तं निर्भजामः) उसे निकाल बाहर करेंगे (यः) जो (अस्मान) हमसे (द्वेष्टि) दुश्मनी करता है।

पृथ्वी पर से उसे उखाड़ फेकेंगे जो हमसे दुश्मनी करता है। पृथ्वी से भाग कर यदि वह अन्तरिक्ष में चला जाय तो—

"अन्तरिक्षात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि।"

अन्तरिक्ष से भी उसे निकाल फेकेंगे जो हमसे दुश्मनी करता है। अन्तरिक्ष से जान बचा कर यदि वह द्यु-लोक में भी चला जायेगा तो—

दिवस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि।"

द्यु-लोक से भी उसे निकाल बाहर करेंगे जो हमसे दुश्मनी करता है। द्यु-लोक से भागकर यदि वह दिशाओं की शरण लेगा तो—

"दिग्भ्यस्तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि।"

दिशाओं से उसे निकाल छोड़ेंगे जो हमसे दुश्मनी करता है। दुश्मन को हम कहीं का भी नहीं रहने देंगे।

(अथर्व० १०-५)

दुश्मन की बात तो दूर रही, दुश्मन से की जाने वाली हिंसा को ही मूर्तिमती मानकर उसे फटकार बतलाता हुआ वैदिक वीर सिंहनाद कर रहा है—

२८. स्वायसा असयः सन्ति नो गृहे,
विद्मा ते कृत्ये यतिधा परूंषि।
उत्तिष्ठैव परेहीतोऽज्ञाते किमिहेच्छसि॥

अथर्व० १०-१-२०

---

२८. (स्वायसाः) मजबूत लोहे की बनी (असयः) तलवारें (सन्ति)

सावधान ! हमारे घरों में लोहे की तीक्ष्ण धार वाली तल-वारें विद्यमान हैं। तलवार की तेज धार से, तेरा एक-एक जोड़ अलग कर देंगे। भाग खड़ी हो, ओ हिंसा-पिशाचिनी ! यहाँ तेरा क्या काम है।

२६. ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ,
चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव। अथर्व० १०-१-२१

ओ शत्रुजन्य हिंसा-पिशाचिनी ! तेरी गर्दन अलग कर दूंगा, तेरे पैर काट डालूंगा; नहीं तो भाग जा यहां से।

और सुनिये, अपनी अपूर्व वीरता का परिचय देता हुआ मनुष्य कह रहा है—

३०. अभीदमेकमेको अस्मि निष्षा-
डभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।

विद्यमान हैं (नः गृहे) हमारे घर में। (विद्म) हम जानते हैं (कृत्ये) ओ हिंसा-पिशाचिनी ! (ते) तेरे (यतिधा) जितने प्रकार के (परूंषि) जोड़ हैं। (उत्तिष्ठ एव) उठ ही जा (परेहि इतः) भाग खड़ी हो यहाँ से, (अज्ञाते) ओ अपरिचिते ! (इह किम् इच्छसि) यहाँ तू क्या चाहती है ?

२६. (कृत्ये) ओ हिंसा-पिशाचिनी ! (ते) तेरी (ग्रीवाः) गर्दन (पादौ-च) और दोनों पैर (अपि कर्त्स्यामि) काट डालूँगा, नहीं तो (निर्द्रव) भाग जा।

३०. (निष्षाड् अस्मि) मैं निःशेष रूप से शत्रुओं का मर्दन कर डालने वाला हूँ, (एकः) अकेला ही (इदम् एकम्) इस एक को (अभि-अस्मि)

खले न पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि,
किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥

ऋग् १०-४८-७

अरे, मैं अकेला ही दुश्मन के छक्के छुड़ा दूंगा। यदि दो मिलकर आयेंगे तो उनके लिये भी मैं अकेला काफी हूँ। और दो की बजाय तीन आ जायेंगे तो वे भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। शत्रु को मैं ऐसे पीस डालूंगा जैसे खलिहान में पूलों को। ये निर्वीर्य दुश्मन मेरी क्या निन्दा कर रहे हैं !

३१. अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं,
सं वृत्रेव दासं वृत्रहाऽरुजम्।
यद् वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्,
दूरे पारे रजसो रोचनाऽकरम् ॥

ऋग् १०-४९-६

परास्त कर दूँगा, (द्वा) दो को भी (अभि-अस्मि) परास्त कर दूँगा, (त्रयः) तीन भी (किमु करन्ति) मेरा क्या कर लेंगे। (खले) संग्राम में (भूरि) इक्ट्ठे बहुतों को (प्रतिहन्मि) मैं कुचल डालूँगा (न) जैसे (खले) खलिहान में (पर्षान्) पूलों को। (अनिन्द्राः) ये निर्वीर्य (शत्रवः) शत्रु (मा किं निन्दन्ति) मेरी क्या निन्दा कर रहे हैं ?

३१. (अहंसः) मैं वह हूँ (यः) जो (नव वास्त्वम्) नई २ हवेलियों वाले (बृहद्रथम्) बड़े २ रथों वाले भी (दासम्) दस्यु की (अरुजम्) धज्जी २ उड़ा देता हूं, (इव) जैसे (वृत्रहा) बिजली (वृत्रा) बादलों की। (यत्) और

सुनो, मैं वह हूँ जिसने गरीबों का खून चूस चूस कर नई २ हवेलियाँ खड़ी कर लेने वाले, बड़े बड़े रथ-बग्घियों पर सैर-सपाटे करनेवाले दस्युओं को बातकी बात में धूल में मिला छोड़ा है। अत्याचार के बल पर फूलने-फलने वाले दुष्टों को मैंने टांग पकड़कर ऐसा उछाला है कि वे द्यु लोक के भी परले पार जाकर गिरे हैं।

देखिये, वैदिक वीर के अन्दर कैसा अदम्य उत्साह है, कैसी वीरता की उमंग है, कैसा प्रबल आत्म-विश्वास है! जो बाह्य या आन्तरिक शत्रु उसके इस उत्साहको, इस मनोबल को कुचलना चाहेगा उसकी वह कैसी दुर्गति बनायेगा यह भी उसी के मुख से सुन लीजिये—

३२. इदं देवाः शृणुत ये यज्ञिया स्थ
भरद्वाजो मह्यमुक्थानि शंसति ।
पाशे स बद्धो दुरिते नियुज्यतां
यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥

अथर्व० २-१२-२

जो, मैं (वर्धयन्तम्) बढ़ते हुए (प्रथयन्तम्) विस्तार को पाते हुए [उस दस्यु को] (आनुषक्) निरन्तर (दूरे) बहुत दूर (रोचना रजसः पारे) चमकीले द्यु-लोक के भी परले पार (अकरम्) कर देता हूं—उठा कर फेंक देता हूँ।

३२. (देवाः) हे देवो! (इदम्) मेरे इस कथन को (शृणुत) सुन लो, (ये) जो तुम (यज्ञियाः) पूजास्पद (स्थ) हो; (भरद्वाजः) मेरा बलवान् मन

ऐ देवो ! सुनलो, मेरी इस भीष्म प्रतिज्ञा को सुन लो । आज मेरे बलवान् मनमें प्रबल संकल्प उठ रहे हैं । जो कोई मेरे मनोबलकी हिंसा करने आयेगा वह पाशबद्ध होकर दुर्गतिको पायेगा ।

३३. इदमिन्द्र शृणुहि सोमप,
यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।
वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं,
यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ॥

अथर्व० २-१२-३

ऐ मेरे आत्मन् ! सुन; जो कि मैं देदीप्त हृदयके साथ पुकार २ कर कह रहा हूँ, काट डालूंगा उसे, जैसे कुल्हाड़े से वृक्ष को, जो मेरे मन की हिंसा करने आयेगा ।

भला किसकी हिम्मत है जो ऐसे उग्र मनस्वी के मन की

(मह्यम्) मेरे लिए (उक्थानि) प्रबल संकल्पों को (शंसति) कह रहा है । (स) वह (पाशे बद्धः) पाश-बद्ध होकर (दुरिते नियुज्यताम्) दुर्गति में पड़े (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदं मनः) इस मन की (हिनस्ति) हिंसा करता है ।

३३. (सोमप इन्द्र) हे वीरता के सोम रस का पान करने वाले मेरे आत्मन् ! (इदं शृणुहि) यह सुन ले (यत् त्वा) जो तुझे (शोचता हृदा) देदीप्त हृदय के साथ (जोहवीमि) पुकार २ कर कह रहा हूँ । (वृश्चामि तम्) काट डालूँगा उसे, (इव) जैसे (कुलिशेन) कुल्हाड़े से (वृक्षम्) वृक्ष को, (यः) जो (अस्माकम्) हमारे (इदं मनः) इस मन की (हिनस्ति) हिंसा करता है ।

हिंसा कर सके ! मन में आने वाले पाप को भी वह वीर देखिये कैसी फटकार बता रहा है—

३४. परोऽपेहि मनस्पाप, किमशस्तानि शंससि ।
परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि संचर,
गृहेषु गोषु मे मनः ॥ अथर्व० ६-४५-१

ओ मन के पाप ! चल, दूर हट मेरे पास से, क्यों निन्दित सलाहें दे रहा है ! चल, लम्बा बन यहां से, वृक्षों से जाकर टकरा, जंगलों में भटकता फिर । मुझे फुर्सत कहां है जो तेरा स्वागत करूं ! मेरा मन तो गृह-कार्यों में और गो-सेवा आदि शुभ कर्मों में लगा है ।

कैसी आत्म विश्वासभरी, वीरतापूर्ण और ज़ोरदार उक्ति है क्या ऐसे सतर्क और साहसी व्यक्ति के मन में पाप कभी डेरा डाल सकता है ? आगे देखिये, अपने संकल्प बल को जागृत करता हुआ वह वीर कह रहा है—

३५. जहि त्वं काम मम ये सपत्ना
अन्धा तमांस्यव पादयैनान् ।

---

३४. (मनस्पाप) ओ मन के पाप ! (परः अपेहि) परे हट, (किम्) क्यों (अशस्तानि) निन्दित (शंससि) सलाहें दे रहा है ? (परेहि) दूर भाग जा (त्वा) तुझे (न कामये) मैं नहीं चाहता हूँ । (वृक्षान्) पेड़ों पर (वनानि) जंगलों में (संचर) भटकता फिर । (मे मनः) मेरा मन तो (गृहेषु) गृह-कार्यों में और (गोषु) गौओं के पालन में [लगा हुआ है]।

निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे
मा ते जीविषुः कतमच्चनाहः ॥

अथर्व० ९-२-१०

जाग, जाग, ओ मेरे संकल्प बल, तू जाग। दुश्मनों को मार गिरा, उन्हें घोर अन्धकार में धकेल दे। वे आततायी निरिन्द्रिय और निर्वीर्य हो जायें, एक दिन को भी जिन्दा न बचने पावें।

अस्तु, आइये अब हम वेद के उन स्थलों पर दृष्टिपात करते हैं जो विशेष रूप से प्रबल आशावाद और आत्म विश्वास से ओतप्रोत है। यह वैदिक दृष्टि नहीं है कि मनुष्य यह समझे कि मैं तो दीन हूँ, हीन हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ, और वह दीनता भरे शब्दों में गिड़गिड़ाता फिरे। वेद तो कहता है कि ऐ मनुष्य! तेरे अन्दर अनन्त शक्ति का बीज निहित है, तू क्या नहीं कर सकता?

३६. दूष्या दूषिरसि. हेत्या हेतिरसि, मेन्या मेनिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥अथर्व० २-११-१

---

३५. (काम) ऐ मेरे संकल्प-बल! (त्वं) तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं उन्हें (जहि) मार गिरा, (एनान्) इनको (अन्धा तमांसि) घोर अन्धकार में (अव-पादय) गिरा दे। (सर्वे) सब (निरिन्द्रियाः) इन्द्रिय-हीन, और (अरसाः) निर्वीर्य (सन्तु) हो जायें, (ते) वे (कतमच्चन अहः) एक दिन को भी (मा जीविषुः) जिन्दा न बचें।

३६. हे नर! तू (दूष्याः) दूषक शक्ति का (दूषिः असि) दूषक है, तू

ऐ नर ! जो शक्ति तुझे दूषित करने आती है उल्टा उसी को तू दूषित करदेने वाला है। शस्त्र का तू शस्त्र है, वज्र का तू वज्र है ! अपने आपको पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबर वालों से आगे बढ़।

३७. सूरिरसि, वर्चोधा असि, तनूपानोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥
अथर्व० २-११-४

ऐ नर ! तू तो विद्वान् है, वर्चस्वी है, शरीर-रक्षक है। अपने को पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबर वालों से आगे बढ़।

३८. शुक्रोऽसि, भ्राजोऽसि, स्वरसि, ज्योतिरसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम॥
अथर्व २-११·

ऐ नर ! तू तो शुद्ध है, तेजस्वी है, आनन्दमय है, ज्योतिष्मान् है। अपने को पहचान। श्रेष्ठों तक पहुँच, बराबरवालों से आगे बढ़।

(हेत्याः) तलवार की (हेतिः असि) तलवार है, तू (मेन्याः) वज्र का (मेनिः असि) वज्र है। (श्रेयांसम्) श्रेष्ठों तक (आप्नुहि) पहुंच, (समम्) बराबर वाले से (अतिक्राम) आगे बढ़।

३७. ऐ नर ! तू (सूरिः असि) विद्वान् है (वर्चोधाः असि) वर्चस्वी है, (तनूपानः असि) शरीर का रक्षक है।......

३८. ऐ नर ! तू (शुक्रः असि) शुद्ध है (भ्राजः असि) भ्राजमान है, (स्वः असि) आनन्द स्वरूप है, (ज्योतिः असि) ज्योतिःस्वरूप है।...

३९. उत्क्रामातः पुरुष मावपत्था,
मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः ॥

अथर्व० ८-१-४

ऐ नर ! उन्नति कर, अवनत मत हो, मौतकी बेड़ीको काट डाल।

४०. उद्यानं ते पुरुष नावयानं
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।

अथर्व० ८-१-६

ऐ नर ! देख, जीवन में तेरी उन्नति होनी चाहिये, अधोगति नहीं। तेरे अन्दर मैं जीवन और बल को फूँकता हूँ।

४१. "इतो जयेतो विजय, संजय जय, स्वाहा ।"

अथर्व० ८-८-२४

इधर विजय पा, उधर विजय पा, कमाल की विजय हासिल कर। जीत, जीत, जीत, हर क्षेत्र में जीत, शाबाश !

---

३९. (पुरुष) हे पुरुष ! (अतः) इस वर्तमान अवस्था से (उत्क्राम) ऊपर उठ, (मा अवपत्थाः) नीचे मत गिर, (मृत्योः) मौत की (पड्वीशम्) बेड़ी को (अवमुञ्चमानः) काट कर नीचे गिरा दे।

४०. (पुरुष) हे पुरुष ! (ते उद्-यानम्) तेरी उन्नति हो (न अवयानम्) अधोगति नहीं, (ते) तेरे लिए (जीवातुं) जीवन को, और (दक्षतातिम्) बल को (कृणोमि) रचता हूं।

४१. (इतः जय) इधर जीत (इतः विजय) इधर विजय पा, (संजय) कमाल की जीत हासिल कर, (जय) सर्वत्र जीत, (स्वाहा) शाबाश !

जैसे हनुमान को अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं था वैसे ही मनुष्य भी अपनी शक्ति को पहचानता नहीं। वेद उसे जगा कर कहता है कि तेरे अंदर तो अपार शक्ति प्रसुप्त पड़ी है, उसे पहचान और आगे बढ़। जब मनुष्य अपनी इस शक्ति को पहचान लेता है तब फिर वह जगह २ दीनतापूर्वक क्रन्दन करता नहीं फिरता। वह किस प्रकार अपनी वीरता के गान गाने लगता है वेद में इसका नमूना भी देखिये—

४२. अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद् धनं,
न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन।

ऋग् १०-४८-५

सुनो मेरा परिचय, मैं इन्द्र हूँ, बाँका वीर हूँ, धन को कभी हार नहीं सकता। यों आसानी से कभी मरने वाला नहीं हूँ।

४३. अहमस्मि सहमान, उत्तरो नाम भूम्याम्।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥

अथर्व० १२-१-५४

---

४२. (अहम् इन्द्रः) मैं इन्द्र हूँ—अद्वितीय वीर हूँ, (इत्) निश्चय ही (धनम्) धन को (न पराजिग्ये) कभी हार नहीं सकता, (कदाचन) कभी (मृत्यवे न अवतस्थे) मौत का विषय नहीं बनता।

४३. (अहम्) मैं (सहमानः) साहसी (अस्मि) हूं, (भूम्याम्) भूमि पर (उत्तरः नाम अस्मि) बड़ा ही उत्कृष्ट प्रसिद्ध हूँ। मैं (अभी-षाड् अस्मि) मुकाबले में आये हुए को परास्त कर देने वाला हूँ, (विश्वा-षाड्)

मैं साहसी हूँ, वीर हूँ, उत्कृष्ट हूँ । दुश्मन से मुकाबला पड़ने पर उसके छक्के छुड़ा देने वाला हूँ । सब शत्रुओं को परास्त कर डालने की ताकत मुझमें है । जिस दिशा में क़दम बढ़ाऊंगा दुष्टों को पकड़ पकड़ कर मसल डालूंगा ।

४४. यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि,
यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमान्-
अवान्यान् हन्मि दोधतः ॥

अथर्व० १२-१-५८

जिससे बात करता हूँ मीठा बोलता हूँ, जिसको ओर दृष्टि करता हूँ वह मुझ से स्नेह करने लगता है । एक तरफ तो मेरा यह मधुर रूप है किन्तु साथ ही ऐसा तेजस्वी और वेगवान् भी हूँ कि जो दुष्ट मुझे अपना क्रोध दिखाते हैं उन्हें बात की बात में गिराता हूँ ।

सब को परास्त कर देने वाला हूँ, (आशाम् आशाम्) प्रत्येक दिशा में (वि-षासहिः) बड़ी ही विशेषता के साथ खूब २ कई-कई बार परास्त कर देने वाला हूँ ।

४४. (यत् वदामि) जो कुछ बोलता हूँ (तद्) वह (मधुमत्) मीठा (वदामि) बोलता हूँ, (यत्) जो (ईक्षे) देखता हूँ (तद्) तो (मा) मुझे (वनन्ति) [सब] चाहने लगते हैं । पर साथ ही मैं (त्विषीमान्) तेजस्वी, और (जूतिमान्) वेगवान् (अस्मि) हूँ, (दोधतः) क्रोध दिखाने वाले (अन्यान्) शत्रुओं को (अवहन्मि) मार गिराता हूँ ।

अरे, मत समझो कि मैं क्षुद्र शक्ति वाला हूँ।

४५. बृहस्पतिर्म आत्मा, नृमणा नाम हृद्यः।

अथर्व० १६-३-५

मेरा आत्मा बड़ा विशाल है, मेरे मन के अन्दर कमाल की नेतृत्व शक्ति भरी पड़ी है।

४६. असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः।
समुद्रो अस्मि विधर्मणा॥

अथर्व० १६-३-६

मेरे हृदय में संताप के लिये जगह नहीं है, मेरी इन्द्रियों की शक्ति बड़ी विस्तृत है गुणों का मैं समुद्र हूँ।

४७. परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाऽहं,
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या,
मा मानुषीरवसृष्टा वधाय॥

अथर्व० १७-१-२८

---

४५. (मे आत्मा) मेरा आत्मा (बृहस्पतिः) बड़ी भारी शक्ति का भंडार है, मैं (नृमणाः नाम) नेतृत्व-शक्ति से भरे मन वाला हूं, (हृद्यः) सबके हृदय को प्रिय लगने वाला हूं।

४६. (मे हृदयम्) मेरा हृदय (असंतापम्) सन्ताप-रहित है, (गव्यूतिः) मेरी इन्द्रियों की गति (उर्वी) बड़ी विशाल है, (विधर्मणा) विशेष विशेष गुणों का (समुद्रः अस्मि) मैं समुद्र हूं।

वेद-ज्ञान का कवच मैं पहने हुए हूँ, सूर्य की ज्योति और प्रताप से मैं भासमान हूँ। दैवी विपत्तियां मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं, मानवी विपत्तियों का तो कहना ही क्या है।

४८. यश्च सापत्नः शपथो, जाम्याः शपथश्च यः।
ब्रह्मा यन्मन्युतः शपात्, सर्वं तन्नो अधस्पदम्॥

अथर्व० २-७-२

दुश्मन का शाप हो चाहे बन्धु का शाप हो, और भले ही स्वयं ब्रह्मा भी क्रुद्ध होकर शाप दे डाले, सबको मैं पादाक्रान्त कर दूँगा।

मत समझो कि यह ४-५ फिट का छोटा सा शरीर भला क्या कर लेगा;—

---

४७. (अहम्) मैं (ब्रह्मणा वर्मणा) वेद-ज्ञान के कवच से, (कश्यपस्य) सूर्य की (ज्योतिषा) ज्योति से (वर्चसा च) और प्रताप से (परीवृतः) घिरा हुआ हूँ। (याः दैव्याः इषवः) जो दैवी बाण हैं वे (मा) मुझे (मा प्रापन्) नहीं प्राप्त हो सकते [अर्थात् दैवी विपत्तियां मुझे चलायमान नहीं कर सकतीं] (मा) नहीं (वधाय) मारने के लिए (अवसृष्टाः) छोड़े हुए (मानुषीः इषवः) मनुष्यों के बाण [अर्थात मनुष्य-जन्म आपत्तियां भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं]।

४८. (यः च) जो भी (सापत्नः) शत्रु का (शपथः) शाप है (यः च) और जो (जाम्याः) बन्धु का (शपथः) शाप है, और (यत्) यदि (ब्रह्मा) साक्षात् ब्रह्मा भी (मन्युतः) क्रोध से (शपात्) शाप दे डालता है तो (सर्वतत्) वह सब (नः अधस्पदम्) हमारे पादाक्रान्त हो जायेगा।

४९. सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो-
ऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।
अस्तृतो नामाहमयमस्मि ॥
अथर्व० ५-९-७

यह मेरी देखने में छोटी-सी लगने वाली आँख शक्ति में छोटी नहीं, किन्तु सूर्य के बराबर है। मेरी प्राण-शक्ति का अन्दाजा लगाना हो तो इस अपार वायु-मण्डल से लगा लो। मेरे शरीर के मध्य भाग की तुलना अन्तरिक्ष से कर सकोगे। और, मेरा यह छोटे-से कद वाला शरीर देखने में छोटा होता हुआ भी शक्ति में छोटा नहीं, किन्तु समूची पृथ्वी के बराबर है। मैं अविनश्वर हूं, किसी के मारे मर नहीं सकता!

ये हैं वैदिक वीर के उद्गार! कई मनुष्य किसी भी कार्य को बड़े निरुत्साह के साथ आरम्भ करते हैं। पहले से ही वे सोचने लगते हैं कि अरे, यह काम तो बड़ा कठिन है, मुझसे यह कैसे हो सकेगा, मैं तो बड़ा अल्प शक्ति वाला हूं, मेरे तो यह बसका नहीं है। पर यह वैदिक भावना नहीं है। वेद के अनुसार तो मनुष्य को सदा उत्साही और आत्म विश्वासी होना चाहिये।

---

४९. (सूर्यः मे चक्षुः) सूर्य के सदृश मेरी आंख है, (वातः प्राणः) वायु के सदृश मेरा प्राण है, (अन्तरिक्षम् आत्मा) अन्तरिक्ष के सदृश मेरा मध्यभाग है, (पृथिवी शरीरम) पृथिवी के सदृश मेरा शरीर है, (अयम् अहम्) यह मैं (अस्तृतः नाम अस्मि) अमर प्रसिद्ध हूँ।

५०. अयुतो ऽहमयुतो म आत्मा
ऽ युतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रम् ।
अयुतो मे प्राणो ऽ युतो मे ऽ पानो-
ऽ युतो मे व्यानो ऽ युतो ऽहं सर्वः ॥
अथर्व० १६.५१-१

देखिये, इस मन्त्र में एक वीर मनुष्य कार्य को आरंभ करते समय कैसी उत्साह की भावना प्रकट कर रहा है ! अरे, मैं एक नही दस हजार हूँ; दस हजार मिलकर जिस काम को कर सकते हैं उसे मैं अकेला कर लूंगा । मेरे अन्दर दस हजार के बराबर आत्मबल है, मेरी आँखों-कानों की शक्ति दस हजार के बराबर है, मुझमें प्राण-बल दस हजार है, मुझमें अपान बल और व्यान बल दस हजार हैं । क्या २ गिनाऊँ, मेरा एक-एक अंग—आँख, नाक, कान, मुख, हाथ, पैर, मन, बुद्धि आत्मा सभी दश सहस्रगुणित शक्ति से आपूरित हैं । मैं क्या नहीं कर सकूंगा ? कौन-सा काम मेरे लिये भला असाध्य है !

---

५०. (अहम्) मैं अकेला (अयुतः) दस हजार के बराबर हूं, (मे आत्मा) मेरा आत्मा (अयुतः) दस हजार के बराबर है, (मे चक्षुः अयुतम्) मेरी आंख दस हजार के बराबर है, (मे श्रोत्रम् अयुतम्) मेरा कान दस हजार के बराबर है, (मे प्राणः अयुतः) मेरा प्राण दस हजार के बराबर है, (मे अपानः अयुतः) मेरा अपान दस हजार के बराबर है. (मे व्यानः-अयुतः) मेरा व्यान दस हजार के बराबर है, (अहं सर्वः) मैं सारा का सारा (अयुतः) दस हजार के बराबर हूं ।

५१. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे-

ऽश्विनो बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् प्रसूत आरभे ॥

अथर्व० १६-५१-२

मैं इस महान् कार्य को आरम्भ करता हूँ, सविता प्रभु से प्रेरणा पाकर इस महान् कार्य को आरम्भ करता हूं। मत समझो कि मैं अपनी इन छोटी २ भुजाओं से क्या कर सकूँगा! ये छोटी २ भुजायें ही शक्ति में द्यौ और पृथ्वी के बराबर हैं; द्यावा पृथिवी की तरह व्यापक और विशाल मेरी भुजायें हैं। मेरी एक भुजा द्यौ है तो दूसरी भुजा पृथिवी है। हां, हां, द्यौ और पृथ्वी के बराबर मेरी भुजायें हैं! मत सोचो कि इन छोटे-छोटे बिलस्त भर के हाथों से मैं क्या कर सकूँगा, ये मेरे हाथ नहीं "पूषा" के हाथ हैं। पूषा सूर्य के कर-जैसे चारों ओर फैले हुए विशाल अन्धकार को पल भर में एक तरफ समेट कर रख देते हैं और १०-१२ घंटे के थोड़े से समय के लिये ही भूमण्डल पर आकर कितने २ कार्य सिद्ध कर जाते हैं, वैसे ही सक्षम और कार्यसाधक मेरे हाथ हैं! ऐसे विशाल हाथों से और ऐसी विशाल भुजाओं से, हे कर्म! मैं तुझे आज प्रारम्भ करता हूं।

---

५१. हे कर्म! (सवितुः देवस्य) प्रेरक परमेश्वर की (प्रसवे) प्रेरणा से (प्रसूतः) प्रेरित होकर, मैं (अश्विनोः बाहुभ्याम्) द्यावापृथिवी के सदृश अपनी भुजाओं से और (पूष्णः हस्ताभ्याम्) 'पूषा' सूर्य केसे हाथों से (त्वा) तुझे (आरभे) प्रारंभ करता हूँ।

यह है वेदोक्त भावना इस वीर भावना से ओतप्रोत होकर जो कार्य प्रारंभ करते हैं वे मध्यमें आने वाली सब विघ्न बाधाओं को चीरते हुए आगे बढ़ते चलते हैं और अन्त में कार्य-सिद्धि तथा विजय-लक्ष्मी के भागी बनते हैं। अस्तु, अन्त में इस प्रबल पुरुषार्थ की भावना का नस-नस में संचार कर देने वाले, वैदिक कर्मयोग के प्रतीकरूप निम्न मन्त्र के साथ अपने इस लेख को समाप्त करते हैं—

५२. कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥
अथर्व० ७-५०-८

मैं हाथ पर हाथ धर कर बैठने वाला नहीं हूँ। मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और बायें हाथ में विजय धरी है। इस "कर्म" रूपी जादू की छड़ी हाथ में लेते ही गौ, घोड़े, धन-धान्य, सोना-चाँदी जो चाहूंगा सो मेरे आगे हाथ बाँध कर खड़ा हो जायेगा।

---

५२. (मे, मेरे (दक्षिणे हस्ते) दाहिने हाथ में (कृतम्) कर्म है, (मे सव्ये) मेरे बायें हाथ में (जयः आहितः) विजय धरी है। इस कर्म द्वारा मैं (गोजिद्) गो-विजयी (अश्वजित) अश्व-विजयी (धनञ्जयः) धन-विजयी (हिरण्यजित्) हिरण्य-विजयी (भूयासम्) हो जाऊँ।

—०—

२

उद्बोधन

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः

ऋग्० १०-१०१-१

मित्रो ! उठो, जागो,

मनोबल से

अनुप्राणित

हो

वो

१. उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः
समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवी-
मिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥

ऋग्० १०-१०१-१

उठो, जागो, हे भाइयो ! मनोबल से अनुप्राणित हो जाओ । एक राष्ट्र के वासी तुम सब अपने अन्दर उत्साह की अग्नि को प्रदीप्त करो । तुम्हारी रक्षार्थ मैं उस "अग्नि" का आह्वान करता हूं जिसे धारण करते ही मनुष्य क्रियाशील हो उठता है, तुम्हारी रक्षार्थ मैं प्रकाश से जगमगाती हुई उस "उषा" का आह्वान करता हूँ जिससे जीवन ज्योतिर्मय हो उठते हैं । अपने जीवनों को 'अग्निमय' बनाओ, अपने जीवनों को ज्योतिर्मय बनाओ ।

२. मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत
द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।

---

१. (सखायः) हे मित्रो ! (उद्बुध्यध्वम्) उठो, जागो (समनसः) मनोबल से युक्त होवो, (सनीडाः) एक निवासस्थान वाले (बहवः) बहुत से तुम सब (अग्निम्) [उत्साह की] अग्नि को (समिन्ध्वम्) प्रदीप्त करो । (दधिक्राम्) जिसे धारण करके मनुष्य क्रियाशील हो जाता है ऐसी (अग्निम्) उत्साहाग्नि को (देवीम् उषसं च) और प्रकाशमयी उषा को (इन्द्रावतः वः) तुम प्रभु-भक्तों की (अवसे) रक्षा के लिए (निह्वये) बुलाता हूँ ।

आप्यायमाना: प्रजया धनेन
शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥
ऋग्० १०-१८-२

हे भाइयो ! उठो, मौत के पैर को परे धकेल दो, श्रेष्ठ लम्बी आयु को धारण करो। धन धान्य और प्रजा से फूलो-फलो और और शुद्ध-पवित्र तथा परोपकारी जीवन वाले बनो।

३. अश्मन्वती रीयते संरभध्व-
मुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा
अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥
अथर्व० १२-२-२६

---

२. (ऐत) आओ, (यत् मृत्यो: पदम्) जो मृत्यु का पैर है उसे (योपयन्त:) परे धकेल कर (प्रतरम्) श्रेष्ठ (द्राघीयः) लम्बी (आयु:) आयु को (दधाना:) धारण करते हुए, (प्रजया) सन्तान से, और (धनेन) धन से (आप्यायमाना:) समृद्धि को पाते हुए (शुद्धा:) शरीर से शुद्ध (पूता:) मन से पवित्र और (यज्ञियास:) परोपकारी जीवन वाले (भवत) होवो।

३. (अश्मन्वती) पथरीली नदी (रीयते) वेग से बह रही है, (सखाय:) मित्रो ! (उत्तिष्ठत) उठो (संरभध्वम्) मिल कर उद्यम करो, और उसे (प्रतरत) तैर जाओ। (अत्र जहीत) यहीं छोड़ दो (ये) जो (असन्) हैं (दुरेवा:) खोटी चालें। इस प्रकार (अनमीवान्) रोग-रहित (वाजान्) ऐश्वर्यों को (अभि) पाने के लिए (उत्तरेम) हम सब नदी के उस पार पहुंच जायें।

उठो, मित्रो ! देखो, वह सामने अनेक विघ्न-बाधाओं के पत्थरों से भरी संसार की दुस्तर नदी वेग से बहती चली जा रही है। उठो, तैयार हो जाओ, एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो, मिल कर उद्यम करो और उसे पार कर जाओ। जो खोटी चालें हैं उन्हें यहीं छोड़ दो। आओ, विघ्न बाधाओं की इस भयंकर नदी के पार उतर कर रोग-रहित ऐश्वर्य-सुख का उपभोग करें।

हे मनुष्य ! जाग उठ, जाग उठ, सोया मत पड़ा रह। देख,

४. **इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।**
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥

ऋग्० ८-२-१८

जो व्यक्ति जाग कर शुभ कर्मों में लगता है उसी को देवता चाहते हैं, सोये पड़े रहने वाले से वे प्रीति नहीं करते। अच्छी तरह समझ ले, प्रमादी की कोई मदद नहीं करता।

५. **यो जागार तमृचः कामयन्ते**
यो जागार तमु सामानि यन्ति।

---

४. (देवाः) देवता (सुन्वन्तम्) शुभ कर्म करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं, वे (स्वप्नाय) सोये पड़े रहने वाले की (न स्पृहयन्ति) स्पृहा नहीं करते, प्रत्युत (अतन्द्राः) प्रमाद रहित वे देव (प्रमादम्) प्रमादी का (यन्ति) नियमन करते हैं।

५. (यः जागार) जो जागा रहता है (तम्) उसी से (ऋचः) ऋचायें (कामयन्ते) प्रीति करती हैं, (यः जागार) जो जागा रहता है (तम् उ)

यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥

ऋग्० ५-४४-१४

जो जागा हुआ है वही ऋचाओं से कुछ लाभ ले सकता है, जो जागा हुआ है उसी की सामवेद के मन्त्र सहायता करते हैं। जो जागा हुआ है उसी के आगे चांद मैत्री के लिये हाथ पसारता है ! उसी की यह सारी प्रकृति दासी बनती है जो जागा हुआ है, जो जागा हुआ है। इसलिये—

६. **उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।**
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥

अथर्व० १६-६३-१

उठ खड़ा हो, जाग जा, ऐ ज्ञानी ! यज्ञ द्वारा अपने अन्दर देव-भावों को जगा ले। अपनी आयु को, प्राण को, प्रजा को, कीर्ति को बढ़ा, पशुओं को बढ़ा, यज्ञ करने वाले को बढ़ा।

उसी के पास (सामानि) सामवेद के मन्त्र (यन्ति) सहायतार्थ पहुँचते हैं। (यः जागार) जो जागा रहता है (तम्) उसे (अयं सोमः) यह चन्द्रमा (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (न्योकाः) तेरे साथ एक घर वाला होकर (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (अस्मि) हूँ।

६. (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानी ! (उत्तिष्ठ) उठ, जाग, अपने अन्दर (देवान्) देवभावों को (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा (बोधय) जगा। (आयुः) अपनी आयु को (प्राणम्) प्राण को (प्रजाम्) सन्तान को, (पशून्) पशुओं को (कीर्तिम्) कीर्ति को (यजमानं च) और यज्ञ करने वाले को (वर्धय) बढ़ा।

हे नर ! तू वीर बन, निरुत्साहित मत हो । यदि अचानक कभी क्षण-दो क्षण के लिये तू हतोत्साह भी हो बैठे तो—

७. आ त एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥

ऋग्० १०-५७-४

पुनः तेरे अन्दर मनोबल संचरित हो जाये ताकि तू कर्म कर सके, बली बने, जिन्दादिल होकर जीने लायक बने और चिरञ्जीवी होकर चिरकाल तक सूर्योदय के रमणीय दृश्य को देखता रहे ।

८. समुद्र ईशे स्रवता-मग्निः पृथिव्या वशी ।
चन्द्रमा नक्षत्राणामीशे, त्वमेकवृषो भव ॥

अथर्व० ६-८६-२

हे मनुष्य ! तू सर्वश्रेष्ठ हो जा, सबका राजा बन जा । देख, जैसे यह समुद्र नदियों का राजा बना हुआ है, यह अग्नि पृथ्वी

---

७. (ते) तेरे अन्दर (पुनः) फिर (मनः) मनोबल (आ-एतु) आ जाये, (क्रत्वे) कर्म के लिए (दक्षाय) बल के लिए (जीवसे) जीवन के लिए च) और (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं दृशे) सूर्य के दर्शन के लिए ।

८. (समुद्रः) समुद्र (स्रवताम्) नदियों का (ईशे) राजा है, (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवी का (वशी) राजा है, (चन्द्रमा) चाँद (नक्षत्राणाम्) तारों का (ईशे) राजा है । ऐसे ही हे नर ! (त्वम्) तू (एकवृषः) सर्व श्रेष्ठ, सबका राजा (भव) हो जा ।

का राजा बना हुआ है, यह चन्द्रमा नक्षत्रों का राजा बना हुआ है, वैसे ही तू भी सबका राजा बन जा।

९. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह
राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहाऽमृतं च रोह
रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥

अथर्व० १३-१-३४

ऐ मनुष्य ! तू उन्नत हो, उन्नत हो, इतना उन्नत हो कि आस्मान में जा चढ़। पृथ्वी पर सबसे उन्नत हो, राष्ट्र में सबसे उन्नत हो, धन-दौलत में सबसे उन्नत हो, प्रजा में सबसे उन्नत हो, अमृत-प्राप्ति में सबसे उन्नत हो, उन्नति में तू सूर्य को छू ले।

१०. बण्महाँ असि सूर्य, बडादित्य महाँ असि।
महाँस्ते महतो महिमा, त्वमादित्य महाँ असि ॥

अथर्व० १३-२-२९

---

९. हे नर ! तू उन्नति करता २ (दिवं रोह) आस्मान में चढ़ जा (पृथिवीं च रोह) पृथिवी पर सब से ऊँचा हो जा (राष्ट्रं च रोह) राष्ट्र में सबसे ऊंचा हो जा (द्रविणं च रोह) धन-दौलत में सबसे ऊँचा हो जा, (प्रजां च रोह) सन्तान की दृष्टि से सबसे ऊँचा हो जा, (अमृतं च रोह) अमृत प्राप्ति में सबसे ऊँचा हो जा, [इतना ऊँचा हो जा कि] (रोहितेन) सूर्य से (तन्वम्) अपने शरीर को (संस्पृशस्व) छुआ ले।

१०. (सूर्य) हे सूर्य से तुलना किये जाने वाले नर ! (बट्) सचमुच

"हे सूर्य-सदृश उच्चता वाले नर! तू महान् है, सचमुच ऐ अमृतपुत्र! तू महान् है! तुझ महान् की महिमा महान् है, हे अमृतपुत्र! तू महान् है।" यदि अपनी इस महत्ता को तू सदा स्मरण रखेगा तो कभी तू पतन की ओर नहीं जा सकता।

११. हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा,
ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।
अव ताँ जहि हरसा जातवेदो-
ऽबिभ्युदुग्रोऽर्चिषा दिवमारोह सूर्य॥
अथर्व० १९-६५-१

हे नर! कान्ति में तू सूर्य है, सूर्य के सदृश ऊँची उड़ान लेने

(महान् असि) तू महान् है, (आदित्य) हे अदिति के पुत्र! हे अमृत-पुत्र! (बट्) सचमुच ही (महान् असि) तू महान् है। (महतः ते) तुझ महान् की (महिमा) महिमा (महान्) महान् है, (आदित्य) हे अमृत-पुत्र! (त्वं महान्) तू महान् है।

११. (सूर्य) हे सूर्य-प्रभ नर! (हरिः) दोषों का हर्ता (सुपर्णः) उत्तम पंखों वाला—ऊँचा उड़ने वाला तू (अर्चिषा) अपने तेज के साथ (दिवम्) उन्नति के द्यु-लोक में (आरुहः) चढ़ जा। (दिवम् उत्पतन्तम्) द्यौ की तरफ़ ऊपर उड़ते हुए (त्वा) तुझे (ये) जो (दिप्सन्ति) दबाना चाहें (तान्) उनको (जातवेदः) हे ज्ञानी! तू (हरसा) अपनी ज्योति से (अवजहि) मार गिरा, (अबिभ्यत्) न डरता हुआ (उग्रः) प्रतापी तू (अर्चिषा) अपने तेज के साथ (दिवम्) द्यु-लोक में—उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर (आरोह) चढ़ जा।

वाला है ! तू उन्नति के द्युलोक में पहुंच जा। उन्नति के द्यौ की तरफ अग्रसर होते हुए तेरे मार्ग में जो भी विघ्न डालना चाहे उसे तू अपने असीम तेज से चकाचौंध करके नीचे गिरा दे। देख, भयभीत मत हो, अपनी अनुपम दुर्दमनीय ज्योति को लिये हुए तू उन्नति की तरफ़ अग्रसर होता जा, होता जा, और अन्त में शिखर पर पहुँच जा।

मत डर कि उन्नति का पथ कण्टकाकीर्ण है—

१२. अप त्यं परिपन्थिनं, मुषीवाणं हुरश्चितम्।
दूरमधि स्रुतेरज ॥

ऋग्० १-४२-३

जो कोई चोर, कुटिल, पापी राक्षस तेरे मार्ग में रास्ता रोक कर खड़ा हो उसे तू पकड़ कर रास्ते से दूर फेंक दे।

१३. सुपर्णोऽसि गरुत्मान्, पृष्ठे पृथिव्याः सीद।
भासाऽन्तरिक्षमापृण, ज्योतिषा दिवमुत्तभान,
तेजसा दिश उद्दृंह ॥

यजु० १७-७२

---

१२. (त्यम्) उस (परिपन्थिनम्) रास्ता रोक कर खड़े हो जाने वाले (मुषीवाणम्) चोर (हुरश्चितम्) कुटिल को (स्रुतेः अधि) मार्ग से (अप-अज) दूर फेंक दे।

१३. हे मनुष्य! (सुपर्णः असि) तू उत्तम पंखों वाला, ऊँची उड़ानें लेने वाला है (गरुत्मान् असि) महान् आत्मा वाला है, तू (पृथिव्याः पृष्ठे)

ऐ नर ! तू सुपर्ण है, ऊंची उड़ान लेने वाला है, ऊंची महत्त्वाकांक्षा वाला है। तू 'गरुत्मान्' है, गुरु आत्मा वाला है, पृथ्वी के सिंहासन पर बैठ; वहाँ बैठकर ऐसा चमक कि अपनी चमक से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण कर दे; अपनी जगमग करती हुई ज्योति से द्यु-लोक को थाम ले, अपने तेज से दिशाओं को उच्च करदे।

१४. सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्य-
ग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण ।
क्षत्राणां पतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥

यजु० १०·१७

ऐ नर ! तुझे चन्द्रमा की ज्योति से अभिषिक्त करता हूं, अग्नि के तेज से अभिषिक्त करता हूं, सूर्य की कान्ति से अभि-

---

पृथ्वी के पृष्ठ पर (सीद) बैठ, (भासा) अपनी चमक से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपृण) भर दे, (ज्योतिषा) ज्योति से (दिवम्) द्यु-लोक को (उत्तभान) ऊपर उठा ले, (तेजसा) तेज से (दिशः) दिशाओं को, सब दिग्वासियों को (उद्-दृंह) उच्च कर दे।

१४. हे नर ! (त्वा) तुझे (सोमस्य) चन्द्रमा के (द्युम्ने) तेज से (अग्नेः) अग्नि के (भ्राजसा) तेज से, (सूर्यस्य) सूर्य की (वर्चसा) कान्ति से (इन्द्रस्य) इन्द्र के (इन्द्रियेण) इन्द्र-बल से (अभिषिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूँ। तू (क्षत्राणां पतिः) क्षत्र-पति (एधि) बन, (दिद्यून्) बाणों को (अति) अतिक्रमण करके—विफल करके (पाहि) आत्म-रक्षा करता रह।

षिक्त करता हूं, इन्द्र की शक्ति से अभिषिक्त करता हूं। तू क्षत्र-पति बन, शत्रु के बाणों को विफल करता हुआ आत्म-रक्षा करता रह।

१५. मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व
धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम्।
पाप्मा हतो न सोमः॥

यजु० ६-३५

भयभीत मत हो, पथ से विचलित मत हो, बलधारण कर। ये दृढ़ द्यावापृथ्वी तुझे दृढ़ता का पाठ पढ़ायें, तेरे अन्दर बल धारण करायें। देख, पाप को संसार से मिटा, आनन्द और शान्ति के अमृत रस को नहीं।

१६. क्षत्रस्य योनिरसि, क्षत्रस्य नाभिरसि।
मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः॥

यजु० २०-१

---

१५. हे नर! (मा) मत (भेः) भयभीत हो; (मा) मत (संविक्थाः) विचलित हो, (ऊर्जम्) बल को (धत्स्व) धारण कर (धिषणे) हे द्यावा-पृथिवी! (वीड्वी सती) दृढ़ होते हुए तुम (वीडयेथाम्) इसे दृढ़ता प्रदान करो, इसके अन्दर (ऊर्जम्) बल को (दधाथम्) धारण कराओ। हे नर! याद रख, (पाप्मा) पाप (हतः) तुझ से मारा जाये, (न सोमः) सोम-रस नहीं।

१६. तू (क्षत्रस्य) क्षात्र-बल का (योनिः) घर (असि) है; तू (क्षत्रस्य)

ऐ वीर ! तू क्षात्र-बल का भण्डार है, तू क्षात्र-बल का केन्द्र है। देख, कोई तेरी हिंसा न करने पावे; तू भी कभी हम निर्दोषों की हिंसा मत कर।

१७. धूरसि धूर्व धूर्वन्तं, धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति,
तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमं
सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

यजु० १-८

ऐ नर ! तू मार सकने वाला है, मार मारने वाले को, मार उसे जो हम निरपराध लोगों को मारता है, उसे मार जिसे हम मारने के लिये कटिबद्ध हैं। तू वीर है, देवजनों का नायक है, तू शुद्धतम है, पूर्णतम है, प्रियतम है, देवों का पूज्यतम है।

१८. तपा ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान्
तपा शंसमररुषः परस्य।

क्षात्रबल का (नाभिः असि) केन्द्र है। कोई भी (त्वा) तेरी (मा हिंसीत्) हिंसा न करने पावे (मा) नहीं (मा) मेरी (हिंसीः) तू हिंसा कर।

१७. हे वीर ! तू (धूः) मार सकने वाला (असि) है, (धूर्व) मार (धूर्वन्तम्) मारने वाले को; (धूर्व तम्) मार उसे (यः) जो (अस्मान्) हम [सज्जनों] को (धूर्वति) मारता है। (तं धूर्व) उसे मार (यम्) जिसे (वयम्) हम [सज्जन लोग] (धूर्वामः) मारने को तैयार हैं। तू (देवानाम्) देवजनों का (वह्नितमम्) सबसे बड़ा नायक (सस्नितमम्) शुद्धतम (पप्रितमम्) पूर्णतम (जुष्टतमम्) प्रियतम (देवहूतमम्) देवजनों का पूज्यतम (असि) है।

तपो वसो चिकितानो अचित्तान्
वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥

ऋग्० ३-१८-२

हे मनुष्य! देख, तेरे दो प्रकार के शत्रु हैं। एक तो आन्तरिक शत्रु हैं, दूसरे बाहरी शत्रु हैं। तेरे अन्दर जो कभी २ निरुत्साह, प्रमाद, हिम्मत हार जाना आदि दुर्बलता के भाव आ जाते हैं वे तेरे आन्तरिक शत्रु हैं। उन आन्तरिक शत्रुओं को तू सन्तप्त कर दे। साथ ही तू ऐसी वीरता दिखा कि जो दूसरे हानिकारक बाह्य शत्रु हैं उनकी भी कुत्सित अभिलाषायें कभी फलीभूत न हो सकें। हे वीर! तू "वसु" है, तू विवेकी है, सब अविवेकी शत्रुओं को तपा डाल। ऐसा तेजस्वी बन कि तुझसे तेज की किरणें निकल २ कर चारों ओर फैलती रहें।

१९. उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र
वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।

---

१८. (अग्ने) हे अग्रणी वीर! तू (अन्तरान्) आन्तरिक (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुतपः) अच्छी तरह से तपा डाल (अररुषः) दान न देने वाले—दूसरों को लाभ न पहुंचाने वाले (परस्य) शत्रु के (शंसम्) अभिलाषा को (तप) तपा डाल। (वसो) हे उत्तम निवासयुक्त! (चिकितानः) विवेकयुक्त तू (अचित्तान्) हृदयहीन अविवेकी शत्रुओं को (तपः) संतप्त कर दे। (ते) तेरी [तेजोरश्मियाँ] (अजराः) अजर-अमर होती हुईं (अयासः) सर्वत्र पहुँचने वाली होती हुईं (वि-तिष्ठन्ताम्) तुझ में विशेष रूप से स्थित रहें।

आकीवतः सललूकं चकर्थ
ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥

ऋग्० ३-३०-१७

हे वीर ! राक्षस को समूल उखाड़ फेंक, इसकी छाती चीर दे, सिर तोड़ डाल । इस लालची को जहां कहीं भी पाये काट डाल, इस ब्रह्मद्वेषी पर तीक्ष्णधार वज्र का प्रहारकर।

२०. अतिधावताऽतिसरा इन्द्रस्य वचसा हत ।
अविं वृक इव मथ्नीत स वो जीवन्मा मोचि,
प्राणमस्यापि नह्यत ॥

अथर्व० ५-८-४

---

१६. (इन्द्र) हे वीर ! (रक्षः) राक्षस को (सहमूलम्) जड़ समेत (उद्-वृह) उखाड़ फेंक; इसके (मध्यम्) मध्य भाग को—छाती को (वृश्च) चीर डाल, (अग्रम्) अग्रभाग को—सिर को (प्रतिशृणीहि) तोड़ दे। इस (सल-लूकम्) लोभी को (आकीवतः) जिस किसी भी स्थान से—जहाँ कहीं भी वह हो वहीं से पकड़ कर (चकर्थ) काट डाल, इस ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मद्वेषी पर (तपुषिम्) तेज (हेतिम्) वज्र को (अस्य) फेंक।

२०. (अतिसराः) हे अग्रगामी वीरो ! (अतिधावत) दौड़ पड़ो, (इन्द्रस्य) अपने नायक के (वचसा) वचन से—आदेश से (हत) दुश्मन पर टूट पड़ो। उस शत्रु को (मथ्नीत) मथ डालो (इव) जैसे (वृकः) भेड़िया (अविम्) भेड़ को। (स वः) तुम्हारा वह शत्रु (जीवन्) जिन्दा (मा मोचि) न छूटने पावे (अस्य) इसके (प्राणम्) प्राण को (अपि नह्यत) बाँध लो—कब्जे में कर लो।

दौड़ पड़ो, हे अग्रगामी वीरो ! अपने नायक की आज्ञा पाते ही दुश्मन पर जा टूटो। राक्षस को पकड़ कर ऐसे झंझोर डालो, जैसे भेड़िया भेड़ को। देखो, वह जिन्दा छूट कर न भागने पावे, इसके प्राणों को अपने कब्जे में कर लो।

२१. मरुतो यद्ध वो बलं, जनाँ अचुच्यवीतन।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥

ऋग्० १-३७-१२

ऐ वीरो ! जो तुम्हारे अन्दर बल है उससे तुम राक्षस-जनों को डिगा दो, पहाड़ों तक को हिला दो।

२२. युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी
युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री।
युष्मोतः सम्राडुत हन्ति वृत्रं
प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥

ऋग्० ७ ५८-४

---

२१. (मरुतः) हे वीरो ! (यत् ह) जो (वः) तुम्हारा (बलम्) बल है उससे (जनान्) राक्षस-जनों को (अचुच्यवीतन) च्युत कर दो-डिगा दो (गिरीन्) पहाड़ों को (अचुच्यवीतन) च्युत कर दो-हिला दो।

२२. (मरुतः) हे वीरो ! (युष्मोतः) तुम से रक्षित (विप्रः) ब्राह्मण (शतस्वी) सैंकड़ों का मालिक हो जाता है, (युष्मोतः) तुम से रक्षित (अर्वा) आक्रमणकारी (सहुरिः) सहनशील योद्धा (सहस्री) सहस्रों का मालिक हो जाता है, (उत) और (युष्मोतः) तुम से रक्षित (सम्राट्) राजा (वृत्रम्)

जिसकी रक्षा में तुम तत्पर हो जाते हो वह ब्राह्मण सैंकड़ों का मालिक हो जाता है, जिसकी रक्षा में तुम तत्पर हो जाते हो वह योद्धा सहस्रों का मालिक हो जाता है। जिसके तुम रक्षक होते हो वह राजा शत्रु को मार गिराता है। ऐ शत्रु-प्रकम्पक वीरो ! तुम्हारा यह लाभकारी रक्षक रूप हमारे सामने भी प्रकट हो।

२३. अक्ष्यौ निविध्य हृदयं निविध्य
जिह्वां नितृन्धि प्र दतो मृणीहि।
पिशाचो अस्य यतमो जघास-
अग्ने यविष्ठ प्रति तं शृणीहि॥

अथर्व० ५-२६-४

हे वीर ! राक्षस की दोनों आँखें फोड़ दे, हृदय चीर दे, जीभ काट डाल, दांत तोड़ दे। जिस किसी भी पिशाच ने तेरे इस भाई को अपना ग्रास बनाया है उसे तू पूर्णतया विनष्ट कर दे।

शत्रु को (हन्ति) मार गिराता है। (धूतयः) हे शत्रु-प्रकम्पक वीरो ! (वः) तुम्हारा (तद्) वह (देष्णम्) लाभदायी रूप (अस्तु) हमारे लिए भी प्रकट हो।

२३. (अक्ष्यौ) दोनों आँखें (निविध्य) फोड़ दे, (हृदयं निविध्य) हृदय चीर दे, (जिह्वां नितृन्धि) जीभ काट डाल, (दतः) दाँतों को (प्रमृणीहि) तोड़ दे, (अस्य) इसे (यतमः पिशाचः) जिस भी पिशाच ने (जघास) हड़पा है (यविष्ठ अग्ने) हे युवा वीर ! (तम्) उसे (प्रतिशृणीहि) तू नष्ट कर दे।

२४. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्
न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो
मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥

अथर्व० ५-२६-११

सदा ही, हे वीर! तू राक्षसों का संहार करता आया है, राक्षस तुझे युद्धों में जीत नहीं सके । अपनी इस परम्परा को क़ायम रख, उन मार-काट मचाने वाले मांसभक्षी राक्षसों को भस्म कर दे । देख, वे तेरी चमचमाती तलवार से बचने न पायें ।

२५. पराशृणीहि तपसा यातुधानान्
पराऽग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
पराऽर्चिषा मूरदेवान् छृणीहि
पराऽसुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥

अथर्व० ८-३-१३

---

२४. (अग्ने) हे अग्रणी वीर ! तू (सनात्) सदा से (यातुधानान्) राक्षसों को (मृणासि) कुचलता आया है. (त्वा) तुझे (रक्षांसि) राक्षस (पृतनासु) युद्धों में (न जिग्युः) कभी नहीं जीत सके । तू (सहमूरान्) मारक स्वभाव वाले (क्रव्यादः) मांसभक्षी राक्षसों को (अनुदह) भस्म कर दे, वे (ते) तेरी (दैव्यायाः हेत्याः) चमचामाती तलवार से (मा मुक्षत) न छूटने पावें ।

२५. (पराशृणीहि) नष्ट कर दे (तपसा) ताप से (यातुधानान्) यातु-

यातुधानों को तपा २ कर मार डाल, हे वीर ! तेज से राक्षस को दग्ध कर दे, आग की लपटों से मार-काट मचाने वालों को भून डाल, दूसरों के प्राणों से अपनी प्यास बुझाने वाले क्रोधी आततायियों को तू पूर्णतया नष्ट करदे।

२६. य आत्मानमतिमात्रमंस आधाय बिभ्रति।
स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥
अथर्व० ८-६-१३

जो आपे से बाहर होकर उछले २ फिरते हैं और पराई स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं उन दुष्ट राक्षसों को, हे शरवीर ! तू नष्ट कर डाल।

२७. यत्रेदानीं पश्यसि जातवेद-
स्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम्।

धानों को, (अग्ने, हे वीर ! (रक्षः) राक्षस को (हरसा) तेज से (परा-शृणीहि) नष्ट करदे। (अर्चिषा) आग की ज्वाला से (मूरदेवान्) मार-काट मचाने वालों को (पराशृणीहि) नष्ट कर दे; (असुतृपः) दूसरों के प्राणों से तृप्त होने वाले (शोशुचतः) क्रोध से जलते हुए सब राक्षसों को (परा-शृणीहि) तू पूरी तरह नष्ट कर दे।

२६. (ये) जो (आत्मानम्) अपने आप को (अतिमात्रम्) बहुत अधिक (अंसे आधाय बिभ्रति) कन्धे पर धरे २ फिरते हैं—अर्थात् आपे से बाहर हुए उछले २ ऊधम मचाते फिरते हैं, और जो (स्त्रीणां श्रोणि-प्रतोदिनः) स्त्रियों की जंघाओं को व्यथा देने वाले हैं—व्यभिचारी हैं, उन सब (रक्षांसि) राक्षसों को (इन्द्र) हे वीर ! (नाशय) नष्ट कर दे।

यद् वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं
तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥

ऋग्० १०-८७-६

हे वीर ! राक्षस को खड़े, चलते-फिरते, आकाश में उड़ते—जहाँ कहीं भी तू देख पाये तेज बाणों से घायल कर दे।

२८. यः पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते
यो अश्व्येन पशुना यातुधानः
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने
तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

अथर्व० ८-३-१५

---

२७. (जातवेदः अग्ने) हे ज्ञानी वीर ! [राक्षस को] (यत्र) जहाँ भी (इदानीम्) अब (पश्यसि) तू देखे, (तिष्ठन्तम्) खड़े हुए (उत वा) अथवा (चरन्तम्) चलते-फिरते हुए (यद्वा) अथवा (अन्तरिक्षे) आकाश में (पथिभिः) रास्तों से (पतन्तम्) उड़ते हुए, तो (तम्) उसको (अस्ता) बाण चलाने वाला (शिशानः) तेजस्वी तू (शर्वा) हिंसक बाण से (विध्य) घायल कर दे।

२८. (यः यातुधानः) जो राक्षस (पौरुषेयेण क्रविषा) पुरुष के मांस से (यः) जो (अश्व्येन क्रविषा) घोड़े के मांस से तथा (पशुना) अन्य किसी पशु से (समंक्ते) अपने को समन्वित करता है, (यः) जो (अग्ने) हे वीर ! (अघ्न्यायाः) गाय के (क्षीरम्) दूध को (भरति) अपहरण करता है, (तेषाम्) उन सब के (शीर्षाणि) सिरों को (हरसा) तेजी से (अपि वृश्च) काट डाल।

जो पुरुष-वध करता है, अश्व-वध करता है, अन्य उपयोगी पशुओं का वध करता है और उनके माँस से अपने को तृप्त करता है, जो गाय को मार कर उसके दूध से लोगों को वञ्चित करता है, उसके सिर को तू धड़ से अलग कर दे।

२६. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति।
यातुधानस्य रक्षसो बलं विरुज वीर्यम्॥
ऋग्० १०-८७-२५

राक्षस ने अपने जिस प्रभाव से चारों ओर कुहराम मचा रखा है उसके उस प्रभाव को अपने अदम्य प्रभाव से तू दबा दे। ऐ वीर! उस पर-पीड़क राक्षस के बल और पराक्रम को तू चूर-चूर कर दे।

३०. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्याऽमित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय॥
ऋग्० १०-२२-८

---

२६. (अग्ने) हे अग्रणी वीर! (विश्वतः) चारों ओर (हरसा) अपने तेज और प्रभाव से (हरः) राक्षस के तेज और प्रभाव को (प्रतिशृणीहि) नष्ट कर दे। (यातुधानस्य रक्षसः) पीड़क राक्षस के (बलम्) बल को, और (वीर्यम्) पराक्रम को (वि-रुज) चूर-चूर कर दे।

३०. जो (अकर्मा) अकर्मण्य (दस्युः) दस्यु (अमन्तुः) नास्तिक (अन्यव्रतः) पापव्रती (अमानुषः) नर-पिशाच (नः अभि) हमें अभिभूत करे, सताये (अमित्रहन्) हे शत्रुहन्ता! (त्वम्) तू (तस्य दासस्य) उस दस्यु के-घातक के (वधः) हथियार को (दम्भय) तोड़ डाल।

हे शत्रुहन्ता वीर ! जो अकर्मण्य, दस्यु, नास्तिक, पापव्रती, नर-पिशाच हमें सताने आये, उसके हथियार को तू तोड़ डाल।

मत सोच कि तू अकेला है, देख—

३१. एक एवाऽग्निर्बहुधा समिद्धः
एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं विभाति-
एकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥

ऋग्० ८-५८-२

"अकेली अग्नि कितनी चमक से चमकती है, अकेला सूर्य विश्व को प्रकाशित करता है, अकेली उषा सब दृश्यमान वस्तुओं को चमका रही है, अकेला परमेश्वर सर्वत्र व्यापा हुआ है।" तू भी अकेला क्या नहीं कर सकता !

३२. सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे
रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।

---

३१. (एकः एव एक ही (अग्निः) अग्नि बहुधा) बहुत प्रकार से (समिद्धः) चमकता है, (एकः सूर्यः एक ही सूर्य (विश्वम् अनु) सारे विश्व के लिए (प्रभूतः) समर्थ है। (एका एव उषाः एक ही उषा (इदं सर्वम्) इस सबको (विभाति) चमकाती है, एकं वै) एक ही [परमेश्वर] (इदं सर्वम्) इस सब में (विबभूव) व्यापक है।

३२. (मन्यो) हे मन्युमूर्ति वीर ! (अस्मे) हमारे हितार्थ (अभिमातिम्)

उग्रं ते पाजो नन्वारुरुध्रे
वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥

ऋग्० १०-८४-३

ऐ मन्युमूर्ति वीर ! गर्वीले शत्रु को परास्त कर दे, शत्रुदल को तोड़ता-फोड़ता, मारता-कुचलता हुआ आगे बढ़। तेरे उग्रबल को कोई रोक नहीं सकता, तू अकेला ही सब दुश्मनों को वश करने में समर्थ है।

३३. पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं, पिशाचिमिन्द्र संमृण।
सर्वं रक्षो नि बर्हय

ऋग्० १-१३३-५

पिशाच कैसा ही तुझे अपना लाल-पीला चेहरा दिखाकर भय दिखाये, कैसा ही वह जोर का दहाड़े, मत पर्वाह कर, उसे कुचल डाल। सब राक्षसों का समूलोन्मूलन कर दे।

अभिमानी शत्रु को (सहस्व) पछाड़ दे, तू (शत्रून्) शत्रुओं को (रुजन्) तोड़ता-फोड़ता (मृणन्) मारता (प्रमृणन्) कुचलता (प्रेहि) आगे बढ़। (ते) तेरे (उग्रम्) उग्र (पाजः) बल को (न नु) कोई नहीं (आ रुरुध्रे) रोक सकता है। (एकज) ऐ अकेले वीर! (वशी) वश करने वाला (त्वम्) अकेला तू (वशं नयसे) [सब शत्रुओं को] वश कर लेता है।

३३. (पिशङ्गभृष्टिम्) क्रोध से लाल हुए २ (अम्भृणम्) बड़े भारी (पिशाचिम्) पिशाच को (इन्द्र) हे वीर! (संमृण) अच्छी तरह कुचल डाल, (सर्वं रक्षः) सब राक्षसों को (निबर्हय) निःशेष रूप से विनष्ट कर दे।

३४. अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति,
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥

ऋग्० १०-१३४-२

दुःखद रूप से मार-काट करने वाले राक्षस के बल को तू नीचा दिखा दे । पैरों से रौंद दे उसे जो हम पर अपनी हुकूमत चलाना चाहता है । याद रख तुझे देवीतुल्य माता ने जन्म दिया है, तुझे श्रेष्ठ माता ने जन्म दिया है ।

---

३४. हे वीर ! (दुर्हणायतः) दुःखद रूप से मार-काट करने वाले (मर्तस्य) मनुष्य के (स्थिरम्) बल को (अव तनुहि स्म) नीचा कर दे । (अधस्पदम्) पैरों तले (तम्) उसे (कृधि) कर दे (यः) जो (अस्मान्) हम पर (आदिदेशति) हुकूमत चलाता है । तुझे (देवी जनित्री) देवी तुल्य माता ने (अजीजनत्) पैदा किया है, (भद्रा जनित्री) श्रेष्ठ माता ने (अजीजनत्) पैदा किया है ।

३

वीरता की उमंग में

बाहू मे बलमिन्द्रियं, हस्तौ मे कर्म वीर्यम्

यजु० २०-७

मेरी भुजाओं में इन्द्र का बल है,
मेरे हाथों में कर्म
और सामर्थ्य
है

१. प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो,

निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः ।

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥

यजु० १-७

राक्षसों को मैंने दग्ध कर दिया है, पूर्णतया दग्ध कर दिया है। शत्रुओं को मैंने दग्ध कर दिया है, पूर्णतया दग्ध कर दिया है। कोई राक्षस और कोई शत्रु बाकी नहीं छूटा है। आहा, अब देखो, मैं स्वच्छन्द आकाश में विहार कर रहा हूँ।

२. पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्,

अन्तरिक्षाद् दिवमारुहम् ।

दिवो नाकस्य पृष्ठात्,

स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥

यजु० १७-६७

---

१. (प्रत्युष्टम्) दग्ध कर दिया गया है (रक्षः) राक्षस, (प्रत्युष्टाः) दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः) शत्रु। (निष्टप्तम्) पूर्णतया दग्ध कर दिया गया है (रक्षः) राक्षस (निष्टप्ताः) पूर्णतया दग्ध कर दिये गये हैं (अरातयः) शत्रु। (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम् अनु) अन्तरिक्ष में (एमि) विहार कर रहा हूं।

२. (पृथिव्याः) पृथ्वी से (अहम्) मैं (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में (आरुहम्) चढ़ गया हूं, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (दिवम्) द्यु-लोक

एक दिन था जब कि मैं नीचे धरती पर ही खड़ा हुआ था। तब बेशक राक्षसों के आघात-प्रतिघात से मैं विचलित हो सकता था। किन्तु आज मेरी वह अवस्था नहीं है, मैं ऊंचा उठ गया हूँ। "धरती से उठ कर अन्तरिक्ष में और अन्तरिक्ष से भी उठ कर द्यु-लोक में पहुंच चुका हूँ। इन उन्नति की सीढ़ियों को क्रमशः पार करके मैं उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ गया हूँ। मैंने स्वर्ज्योति के दर्शन कर लिये हैं।" आज किसकी ताकत है जो मेरे सामने आंख उठा कर भी देख सके।

३. शिरो मे श्रीर्यशो मुखं, त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं, सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥
यजु० २०-५

मेरे सिर में बड़े बड़े ज्ञान-विज्ञान का ऐश्वर्य भरा है, चेहरे पर यशस्विता छाई है, केश और श्मश्रुओं से दीप्ति फूटी पड़ रही

में (आरुहम्) चढ़ गया हूं। (नाकस्य पृष्ठात्) स्वर्ग के पृष्ठ (दिवः) द्यु लोक से (स्वर्ज्योतिः) आनन्द की ज्योति को (अगाम्) प्राप्त कर लिया है (अहम्) मैंने।

३. (मे शिरः) मेरा सिर (श्रीः) साक्षात् ऐश्वर्य है, (मुखम्) चेहरा (यशः) साक्षात् यश है, (श्मश्रूणि) मूंछें (केशाः च) और केश (त्विषः) दीप्ति के अवतार हैं। (मे प्राणः राजा) मेरा प्राण-राजा (अमृतम्) अमर है, (चक्षुः) आंख (सम्राट्) सम्राट्-तुल्य है, (श्रोत्रम्) कान (विराट्) शक्तिवाला है।

है। मेरा प्राण-राजा अमर है, मेरी आंख सम्राट् के तुल्य है, मेरा श्रोत्र विराट् शक्ति से सम्पन्न है।

४. जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो, मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अंगुली-रङ्गानि मित्रं मे सहः॥

यजु० २०-६

मेरी जिह्वा भद्रवादिनी है, वाक्शक्ति महान् है, मन में मन्यु भरा है, दीप्ति देखने ही लायक है। मेरे शरीर की एक-एक अंगुलि, शरीर का एक-एक अंग मोद-प्रमोद से नाच रहा है, साहस मेरा मित्र है।

५. बाहू मे बलमिन्द्रियं हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम॥

यजु० २०-७

---

४. (मे जिह्वा) मेरी जिह्वा (भद्रम्) भद्र है, (वाक्) वाक्शक्ति (महः) महान् है, (मनः) मन (मन्युः) मन्युयुक्त है, (भामः) दीप्ति (स्वराट्) स्वतः दमकती हुई है। (अंगुलीः) अंगुलियां, और (अङ्गानि) अन्य सब अङ्ग (मोदाः प्रमोदाः) मोद-प्रमोद-युक्त हैं। (सहः) साहस (मे मित्रम्) मेरा मित्र है।

५. (मे बाहू) मेरी भुजायें (इन्द्रियं बलम्) साक्षात् इन्द्र का बल हैं, (मे हस्तौ) मेरे दोनों हाथ (कर्म वीर्यम्) साक्षात् कर्म और सामर्थ्य की मूर्ति हैं। (आत्मा) मेरा आत्मा (क्षत्रम्) क्षत्र है—दुखियों को कष्टों से बचाने वाला है, (मम उरः) मेरी छाती भी (क्षत्रम्) क्षत्र है—स्वयं चोटें सहकर दूसरों को चोट से बचाने वाली है।

मेरी भुजाओं में इन्द्रका-सा बल है, हाथों में कर्म और सामर्थ्य है। मेरा आत्मा दुःखियों के कष्ट को दूर करने वाला है, मेरी छाती चोटों को सहने वाली है।

६. मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।
घर्मस्त्रिशुग् विराजति, विराजा ज्योतिषा सह,
ब्रह्मणा तेजसा सह ॥

यजु० ३८-२७

मेरे अन्दर बड़ा भारी इन्द्र का बल है, मेरे अन्दर उत्साह है, मेरे अन्दर संकल्प बल है, शरीर-मन-आत्मा तीनों का तेज मेरे अन्दर दमक रहा है, मैं विराट् ज्योति से भासमान हूँ, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हूँ।

७. नाहमितो निरया दुर्गहैतत्,
तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि।

---

६. (मयि) मुझ में (त्यद्) वह प्रसिद्ध (बृहत्) बड़ा भारी (इन्द्रियम्) इन्द्र का बल है, (मयि) मुझमें (दक्षः) उत्साह है, (मयि) मुझ में (क्रतुः) संकल्प या कर्म है। मुझमें (त्रिशुग् घर्मः) [शरीर, मन, आत्मा के] तीन तेजों से युक्त दीप्ति (विराजति) विराजमान है (विराजा ज्योतिषा सह) विराट् ज्योति के साथ और (ब्रह्मणा तेजसा सह) ब्रह्म-तेज के साथ।

७. (अहम्) मैं (इतः) इधर से (न निरयाः) नहीं निकलूँगा, (एतत्) यह रास्ता (दुर्गहा) मेरे लिये मुश्किल से ही पकड़ने योग्य है। मैं तो

बहूनि मे अकृता कर्त्वानि,
युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ।।

ऋग्० ४-१८-२

अरे, मैं इस टेढ़े-मेढ़े, घुमा-फिरा कर बड़ी देर में लक्ष्य तक पहुँचाने वाले कुटिल रास्ते को नहीं पकड़ूँगा। यह रास्ता तो उनके लिये है जिनमें सीधे किन्तु तीक्ष्णधार रास्ते पर चलने की हिम्मत नहीं है। मैं तो सीधा रास्ता काट कर निकल जाऊँगा। मुझे इधर-उधर भूल-भुलैयों में समय नष्ट करने का अवकाश कहाँ है? मेरे आगे अनेकों महान् कार्य पड़े हैं। समय थोड़ा है, कार्य अधिक है। तिस पर यह कि पग-पग पर संघर्ष है। इस बाधा से लड़ना है, उस बाधा से भिड़ना है और रास्ता चीर कर आगे बढ़ना है। किसी से लड़ना है, किसी से पूछताछ करने के लिये बीच में रुकना है।

८. अहमस्मि सपत्नहा-इन्द्र इवारिष्टो अक्षतः।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ।।

ऋग्० १०-१६६-२

(तिरश्चता) सीधे चीरते हुए (पार्श्वात्) पार्श्व से (निर्गमाणि) निकल जाऊँगा (मे) मेरे लिये (बहूनि) बहुत से (कर्त्वानि) ऐसे करने योग्य काम हैं (अकृता) जिन्हें आज तक किसी ने नहीं किया है। मैं (त्वेन) किसी से (युध्यै) लड़ूँगा (त्वेन) किसी से (संपृच्छै) पूछताछ करूँगा

८. (अहम्) मैं (सपत्नहा) शत्रु-हन्ता (अस्मि) हूँ, (इन्द्रः इव) इन्द्र

मैं शत्रु-हन्ता हूँ, इन्द्र की तरह अविनाशी और अक्षत हूँ। इन सब शत्रुओं को पल-भर में मैं पैरों तले रौंद दूंगा।

९. अभिभूरहमागमं, विश्वकर्मेण धाम्ना।

आवश्चित्तमा वो व्रत-मा वोऽहं समितिं ददे॥

ऋग्० १०-१६६-४

ऐ मुझ से शत्रुता करने वालो! सावधान! देखो, अपने सर्वकार्यक्षम तेज के साथ मैं आ पहुँचा हूँ। तुमने जो मेरे विनाश के बड़े-बड़े मनसूबे बाँध रखे हैं, जो बड़े-बड़े षड्यन्त्र रच रखे हैं, जो संघ-समितियाँ बना रखी हैं, उन सबको मैं अभी अपनी मुट्ठी में किये लेता हूँ।

१०. अपाम सोमममृता अभूम-

अगन्म ज्योतिरविदाम देवान्।

की तरह (अरिष्टः) अविनाशी और (अक्षतः) अक्षत हूं। (इमे सर्वे) ये सब (सपत्नाः) शत्रु (मे पदोः अधः) मेरे पैरों के नीचे (अभिष्ठिताः) कुचले जायेंगे।

९. (अभिभूः) पराजयकारी (अहम्) मैं (विश्वकर्मेण धाम्ना) सर्वकर्म-क्षम तेज के साथ (आगमम्) आ गया हूँ। (वः चित्तम्) तुम्हारे विचार को—इरादों को (आददे) वश में किये लेता हूँ, (वः व्रतम्) तुम्हारे कर्म को तुम्हारी करतूतों को (आददे) वश में किये लेता हूँ, (वः समितिम्) तुम्हारी समिति को–दलबन्दी को (आददे) वश में किये लेता हूँ।

किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः
किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥

ऋग्० ८-४८-३

ऐ सोम ! हमने तुझ अमरता के नुसखे का पान कर लिया है, हम अमर होगये हैं; हमने ज्योति पा ली है, हमने देवों को पा लिया है। शत्रु हमारा क्या कर सकता है, हिंसक हमारा क्या बिगाड़ सकता है ?

११. नहि मे अक्षिपच्चनाऽच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०-११९-६

मैंने सोमरस का–वीरता के अमृतरस का–पान कर लिया

---

१०. (अमृत) हे अमरता के नुसखे सोम ! हमने (सोमम्) तुझ सोम को (अपाम) पी लिया है (अमृताः अभूम) हम अमर हो गये हैं। (ज्योतिः) ज्योति को (अगन्म) पा लिया है, (देवान्) देवों को (अविदाम) पालिया है। (नूनम्) निश्चय ही (अरातिः) शत्रु (अस्मान् किं कृणवत्) हमारा क्या कर सकेगा, (मर्त्यस्य) किसी मनुष्य की (धूर्तिः) हिंसा (किमु) हमारा क्या बिगाड़ सकेगी।

११. (पञ्च कृष्टयः) पाँचों मनुष्य–धरती भर के सब मनुष्य (मे) मेरे अक्षिपत् चन) अक्षिपात तक को–पलक झपकाने की छोटी सी क्रिया तक को (नहि अच्छान्त्सुः) नहीं रोक सकते, मैंने (कुवित्) बहुत २ (सोमस्य) सोमरस का (अपाम्) पान कर लिया है (इति) इस कारण से।

है, बहुत २ पान कर लिया है। मुझमें वह शक्ति आ गई है कि दुनियाँ का कोई मनुष्य मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

१२. नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०-११६-७

मैं तो इतना महान् हो गया हूँ कि ये विशाल द्यावापृथिवी मेरी एक बाजू के बराबर भी नहीं हैं। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

१३. अभि द्यां महिना भुवमभीमां पृथिवीं महीम्।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०-११६-८

बेशक यह द्यु-लोक बड़ा महिमाशाली है, पर अपनी महत्ता से मैंने इसे भी पीछे छोड़ दिया है। बेशक यह पृथिवी बड़ी विशाल है, पर अपनी विशालता से मैंने इसे भी परास्त कर दिया है। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

---

१२. (उभे रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों (मे) मेरे (अन्यं पक्षं चन) एक पासे के भी (प्रति) बराबर (नहि) नहीं हैं .... ।

१३. मैंने (महिना) अपनी महिमा से (द्याम्) द्यौ लोक को (अभिभुवम्) पराजित कर दिया है, (इमाम्) इस (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभिभुवम्) पराजित कर दिया है........।

१४. हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०-११९-९

अरे, मेरे अन्दर तो वह शक्ति आ गई है कि कहो तो इस धरती तक को उठा कर यहाँ रख दूं, वहाँ रख दूँ, जहां कहो वहीं रख दूं। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

१५. ओषमित् पृथिवीमहं जंघनानीह वेह वा।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०-११९-१०

मैं पृथिवी को दग्ध करने वाले इस विशाल सूर्य तक को छोटी सी फुटबाल की तरह एक ठोकर से जहां कहो वहीं पहुँचा दूँ। मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है।

---

१४. (हन्त) अरे भाई! (अहम्) मैं (इमां पृथिवीम्) इस पृथिवी को (इह वा इह वा) यहां या यहां [जहां बताओ वहां] (निदधानि) उठाकर धर दूं......।

१५. (अहम्) मैं (पृथिवीम् ओषम् इत्) पृथ्वी के दाहक सूर्य तक को (इह वा इह वा) यहां या यहां [जहां बताओ वहां] (जङ्घनानि) प्रहार करके पहुँचा दूं......।

१६. अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित् सोमस्यापामिति ॥

ऋग्० १०-११६-१२

अरे, मैं तो आकाश में उदित साक्षात् महातेजस्वी सूर्य हो गया हूँ । मैंने वीरता के रस का पान कर लिया है, वीरता के रस का पान कर लिया है, बहुत २ पान कर लिया है ।

मैं

वीर हूँ ! वीर हूँ !! वीर हूँ !!!

---

१६. (अहम्) मैं तो (अभिनभ्यम्) आकाश में (उदीषितः) उदित हुआ २ (महामहः) महातेजस्वी सूर्य (अस्मि) हो गया हूँ; मैंने (कुवित्) बहुत २ (सोमस्य) सोमरस का (अपाम्) पान कर लिया है (इति) इस कारण से ।

वैदिक वीर-गर्जना

रामनाथ वेदालङ्कार

ॐ

लेखक की दूसरी पुस्तक

अथर्ववेद की अमृत-सूक्तियाँ

शीघ्र छपेगी

इसमें विविध विषयों पर छोटी २ बहुत ही उपयोगी लगभग एक हज़ार सूक्तियां अथर्व-वेद से चुन कर संगृहीत की गई हैं। प्रभु-स्तुति, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्य, माता-पिता-अतिथि आदि गुरु-जनों की सेवा, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि के परस्पर कर्तव्य, दान, गो-सेवा, भ्रातृ-भाव, राष्ट्र-भक्ति, राजनीति, उद्बोधन, वीरता, दीर्घायुष्य, जीवन-शक्ति, रोग-निवारण आदि सभी उपयोगी विषयों की सूक्तियों का इसमें समावेश है। प्रत्येक सूक्ति के साथ बड़ी ही सरल, सुन्दर भाषा में उसका हिन्दी अनुवाद भी दे दिया गया है। अध्यापकों, विद्या-र्थियों, उपदेशकों, आर्य वीरों, सभी के काम की यह पुस्तक होगी। अनेक विद्वानों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। प्रत्येक वेदप्रेमी आर्य को इसकी एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिये। अभी से अपने नाम एक या अधिक प्रतियाँ रिज़र्व करा लीजिये। लेखक को एक कार्ड भेज देना पर्याप्त है।

मूल्य

लगभग १॥)